काशी मोक्ष रहस्य



काशी शोध संस्थान

सी.के. ३५/८ ज्ञानवापी, वाराणसी

काशी मोक्ष रहस्य

पं० केदारनाथ व्यास

प्रणीत

प्रकाशकः

काशी शोध संस्थान

सी. के. ३५/८ ज्ञानवापी, काशी

अनुक्रमणिका

भूमिका

इस संसार के प्राणियों में उत्तम योनि मनुष्य को ही प्रदान की गयी है। कारण यह है कि इसमें हानि लाभ समझने की विशेष बुद्धि है, जिससे यह उत्तमोत्तम कार्यों को कर सकता है। परन्तु बहुधा मनुष्य इस योनि को प्राप्त कर कुटुम्ब और शरीर की रक्षा में ही रह जाते हैं, यद्यपि शरीर द्वारा चारों फलों की प्राप्ति होती है अतः इस शरीर की रक्षा अवश्य होनी चाहिए। इसकी रक्षा के पश्चात् इनसे मुख्य कार्य क्या लेना चाहिए, मनुष्य भूल गये हैं। मुख्य उद्देश्य गर्भावासादि आवागमन, जन्म-मरण से मुक्त होना है यदि मनुष्य यह कार्य न कर सका तो शरीर की रक्षा करना व्यर्थ है।

सम्पूर्ण प्राणियों के पूर्व कर्मानुसार पाप-पुण्य, सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक, से निवृत होने के लिए स्वंयम् चारों वेदों की रचना की, ऋषियों द्वारा मानव-कल्याणार्थ अनेक सद्ग्रंथ रचे गये है। जिनमें मुक्ति के अनेक उपाय भरे पड़े है।

यद्यपि अनेक प्रकार के पापों से जीवों का उद्धार करके पुनः अपने में लीन करने के लिए परम कृपालु ने ब्रह्मज्ञान प्रकट किया।

'ऋतेज्ञानान्न मुक्ति' 'तरति शोकमात्मवित्'

इत्यादि वाक्यों से ज्ञान ही मुक्ति का हेतु बना और उस ब्रह्म ज्ञान के साधन निमित्त जप-तप-योग-यज्ञादि कलियुग में आयु ज्ञान और द्रव्य व्यापार के अभाव में सर्व साधारण मनुष्य से नहीं हो सकेंगे यथा-

बहूपसर्गो योगेयं कृच्छ्रसाध्यं तपो हि यत् ।

योगाद् भ्रष्टस्तपोभ्रष्टो-गर्भक्लेशसहः पुनः ।।१४०।। (अ. २६का. खं)

योग तो अनेक विघ्नों से भरा पड़ा है और तप बड़ा ही कष्ट साध्य है । (इसके बिना ज्ञान दुर्लभ है) अतः योग और तप से भ्रष्ट होकर बारम्बार गर्भवास का क्लेश सहना पड़ता है । अतएव सर्वशक्तिमान परम दयालु सर्वसाधारण जीवों के उपकारार्थ भी विश्वेषत्वं युक्त स्वयं तीर्थरूप ग्रहण करके जगत् में प्रकाशमान हुआ । यथा -

ब्रह्मैव तन्निर्गुणं निर्विकारं निरन्तरं क्षेत्ररूपेण नित्यम् ।

तिष्ठत्येन्म्यम्बको यत्र नित्यं तद्रूपत्वात्सन्निहित एवास्ते ।।

विभूर्तिस्वां दर्शयिष्यन् गिरीशः क्षेत्रकारं प्राप्य तीर्थाकृतिश्च ।

(पद्मपुराण)

जो निर्विकार निर्गुण और नित्य ब्रह्म है, तद्रूपता से वही शङ्कर क्षेत्र (तीर्थ) रूप होकर अपने ऐश्वर्य को दिखलाता है । तीर्थ शब्द का अर्थ तारना है, अर्थात् जिसमें भवसागर से तार देने की शक्ति हो वह तीर्थ है।

भूमि के तीन विभाग किये गये है---भोगभूमि, कर्मभूमि, ज्ञानभूमि। भोगभूमि जिसके सेवन से लौकिक सुख प्राप्त हो । जैसे विदेश आदि माने गये हैं । कर्मभूमि जिसके सेवन से परलोक सुख (स्वर्गादि) की प्राप्ति हो, (यथा कुरुक्षेत्रादि) और जिसके सेवन से अन्त समय ज्ञान को प्राप्त होकर इस अनित्य, सदा चंचल, आध्यात्मिक त्रिविध दु;ख के एकमात्र लीलास्थल संसार सागर से पार होकर परमानन्दमय शान्ति निकेतन नित्यधाम में पहुँच जाय, उसे ज्ञानभूमि कहते हैं । यथा श्रीकाशी यहाँ अन्त समय साक्षात् शङ्कर ऐसे गुरुपरम् ज्ञानोपदेश करते हैं । भोगभूमि के अतिरिक्त कर्म और ज्ञानभूमि ही को तीर्थ या क्षेत्र कहते हैं, और कर्म भूमियों में प्रधान कुरुक्षेत्र है । वह कुरुक्षेत्र स्वयम् काशी का साधक है । यथा-महाभारत नीलकंठी टीका ।

'सर्वेषां तीर्थाणां कुरुक्षेत्रप्रापकत्वम् ।

कुरुक्षेत्रस्य तु काशीप्रायकत्वम् ॥'

(वनपर्व अ. ८३ श्लोक २०३)

अर्थात् सर्वतीर्थ कुरुक्षेत्र के प्रापक हैं और कुरुक्षेत्र स्वयम् काशी का साधक है। क्रियार्थक 'कृ' धातु से कुरुपद की, निष्पत्ति और प्रकाशार्थक 'काश' धातु से काशी पद की, आलोचना करने से हमारे सिद्धान्त की समीचीनता प्रतिपन्न होगी ।

ईश्वरमय तथा ईश्वर रचित भूमि के भिन्न-भिन्न भागों में भी भिन्न-भिन्न गुण हैं । प्राय: कहा जाता है कि भूमण्डलान्तर्गत तीर्थ की भूमि में भी पवित्रता और तारने की शक्ति विशेष मानी गयी है । ऐसा सनातन धर्म के सभी ग्रन्थों में वर्णन मिलता है ।

धर्मस्तु संपत्तिभरैः किलोह्यतेप्यर्थोहिकामैर्बहुदान भोगकैः ।

अन्यत्र सर्व सच मोक्ष एकः काश्यां न चान्यत्र तथा यथात्र ॥

(अ. ५-२३ का खं.)

अर्थात् किसी तीर्थ स्थान में विशेष धन व्यय करने से धर्म का लाभ होता है, और कहीं पर बहुत भोगों की सामग्री के दान द्वारा, अर्थ और काम की भी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु एक मोक्षपद जैसा काशी में प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं हो सकता ।

अयोध्यामथावन्त्यां मथुरायामथापि वा ।

द्वारवत्यां च काञ्च्यां वा मायापुर्यामिथोनृप ।। ६३।।

अपिपातकिनो ये च कालेन निधनं गता ।

तेहि स्वर्गादिहागत्य काश्यां मोक्षमवाप्नुयुः ।। ६४।। (का. ख. अ. २४)

अयोध्या, अवन्तिका, मथुरा, द्वारावती, काँची, अथवा मायापुरी (हरिद्वार) में जो पापी लोग यथाकाल वास कर मर जाते हैं वे सब स्वर्ग से होकर यहाँ काशी ही में मोक्ष को प्राप्त होते हैं। काशी में मोक्ष के कारण अनेक हैं, सद्ग्रन्थों के प्रमाण से काशी में सब तीर्थों से विशेषता पाई जाती है और इस काशी में सच्चि-दानन्द परब्रह्म विश्वनाथ ही मूर्तिमान होकर स्वयं विराजमान हैं। इससे दूसरे तीर्थ इसकी समानता को नहीं पा सकते यथा-

विश्वेश्वरो यत्र न तत्र चित्रं धर्मार्थ कामा मृतरूप रूपः ।

स्वरूपरूपः सहिविश्वरूपस्तस्मान्न काशी सदृशी त्रिकोकी ।। ९८।।

(का. खं. अ. ५)

जहाँ पर धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष को देने के लिए मूर्तिमान् होकर भगवान् विश्वेश्वर स्वयम् निवास करते हैं, वहाँ पर (मुक्त लाभ) यह कौन सी आश्चर्य की बात है। क्योंकि त्रैलोक्य भी काशी के समान नहीं है।

निष्प्रत्यूहेन योगेन नानाजन्मार्जितेन च ।

यत्फलं लभतेऽयन्त्र तत्काश्यां त्यजतस्तनुम् ।। ३३।।

तप्त्वा तपांसि सर्वाणि बहुकालं जितेन्द्रियैः ।

यत्फलं लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्यामेकरात्रतः ।। ३४।।

(का. खं. अ. २६)

अन्य स्थानों में अनेक जन्मार्जित निर्विघ्न योग के द्वारा जो फल प्राप्त किया जाता है, काशी में वह फल केवल शरीर के त्याग मात्र से मिल जाता है ।।३३।।

अन्यत्र बहुत काल जितेन्द्रिय होकर सब प्रकार की तपस्या करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल एक रात्रि जागरण मात्र से प्राप्त होता है ।।३४।।

विषयासक्तचित्तोपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ।

इहक्षेत्रं मृतः सोपिसंसारेन पुनर्भवेत् ।। ६३।।

(लिंगपुराण पूर्वभाग अ. ९२)

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि विषयासक्त प्राणी सब धर्मों से रहित होने पर भी इस क्षेत्र में मरने पर पुनः जन्म नहीं पाता है ।

इदंगुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम ।

सर्वेषामेव जंतूनां हेतुमोक्षस्य सर्वदा ।। ३८।।

अस्मिन्सिद्धा सदा देवि मदीयं व्रतमास्थिताः ।

अभ्यस्यन्तिपरंयोगं [redacted] जितेन्द्रियाः ।। ३९।।

मम क्षेत्रमिदं तस्माद विमुत्तमितिस्मृतम् ।। (लिंग पु.)

यह काशी अत्यन्त गोपनीय क्षेत्र है, क्योंकि सम्पूर्ण जन्तुओं के मोक्ष का हेतु है, इस काशी क्षेत्र में बहुत बड़े-बड़े सिद्ध व्रत लेकर मोक्ष की कामना से निवास करते हैं ।

योग से युक्त होकर जितेन्द्रिय महापुरुष योग का अभ्यास करते हैं। हे देवी, यहाँ पर जिस प्रकार से मोक्ष प्राप्त होता है वैसा दूसरी जगह नही, क्योंकि यहाँ शरीर त्यागने मात्र से मुक्ति प्राप्त हो जाती है । यह पञ्चक्रोशात्मिका काशी नाम की भूमि यथार्थ में तेजोमय शिवलिङ्ग (मूर्तिमान) है ।

'भूमिष्ठापिन यात्रा भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरधः स्थापि या ।

यावद्धा भुवि मुक्तदास्युरमृतं यस्या मृताजन्तवः ।।

या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनीतीरे सुरैः सेव्यते ।

सा काशी त्रिपुरारिराजनगरीपायादपायाज्जगत्।।' (स्कन्दपुराण)

काशी का पृथ्वी से सम्बन्ध नहीं है। स्वर्गलोक से उच्चतर है। जागतिक सीमा से आबद्ध होने पर भी मोक्षदायिनी है त्रैलोक्यपावनी भागीरथी के तट पर शोभित और सुसेवित है और काशी त्रिपुरारि राज-नगरी है। सात मोक्षपुरियाँ कालान्तर में काशी प्राप्त कराकर ही मोक्ष प्रदान करती है, पर काशी स्वतः साक्षात् मोक्ष देती है। तारक मन्त्र से जीव को तत्वज्ञान हो जाता है और अपना ब्रह्म स्वरूप प्रकाशित हो जाता है।

किं मयावर्ण्यते देविं ह्यविमुक्तफलोदयः ।
पापिनां यत्र मुक्तिः स्यान्मृतानामेकजन्मना ।। ७५।।
अन्यत्र तु कृतं पापं वाराणस्यांविनश्यति ।
वाराणस्यां कृतं पापं पैशाच्यनरकावहम् ।। ७६।।
कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वर नृणाम् ।
न तु शक्रसहस्रत्वं स्वर्गे काशीपुरी बिना ।। ७७।।

हे देवि! अविमुक्त काशी के विषय में मैं क्या वर्णन करूँ। एक ही जन्म में बड़े से बड़े पापियों की काशी में मरने पर मुक्ति हो जाती है। दूसरी जगह के किये हुए पाप वाराणसी में नष्ट हो जाते हैं और वाराणसी में किया हुआ पाप पिशाच योनि को प्राप्त कराते हैं। काशी में रहकर हजारों पाप करके पिशाच होना ठीक, काशी के बिना हजारों बर्ष तक स्वर्ग में रहना ठीक नहीं।

गणपति वन्दना

गौरीपुत्र गणेश्वरं शुभकरं धर्मार्थसम्पत्करं,

विघ्नव्याधिविनाशनं गजमुखं गौरीसुतं सुन्दरम् ।

वाणीशेषमहेश्वराद् गुरुतरं देवाधिदेवाधिपं,

वन्दे मूषकवाहनं शिवसुतं कुर्यात् स नो मंगलम् ।।

गौरी एवं शिव के पुत्र गणों के ईश्वर शुभ को देने वाले, धर्म अर्थ रूपी सम्पत्ति प्रदान करनेवाले विघ्न व्याधि का विनाश करने वाले गजमुख वाले, कार्य को श्रेष्ठ और सुन्दर बनाने वाले वाणी से अकथनीय महेश्वर से श्रेष्ठ पदवी को प्राप्त कर देवताओं के आधार, मूषकवाहन शङ्कर के पुत्र जो सर्वत्र व्याप्त है वह सदा मङ्गल करें ।

श्रीविश्वेश्वर वन्दना

कण्ठे यस्य विराजते हि गरलं गङ्गाजलम्मस्तके

वामाङ्गे गिरिराजराजतनया जाया भवानी सती ।

नन्दीस्कन्दगणाधिराजसहितः श्रीविश्वनाथप्रभुः

काशीमन्दिर संस्थितोऽखिलगुरुर्देयात् सदा मङ्गलम् ।।

कण्ठ में जिसके विष सुशोभित है तथा मस्तक पर गङ्गाजल है बांये भाग में गिरिराज की पुत्री भवानी सती पार्वती हैं। जो नन्दी, स्कन्द, गणेश सहित सुशोभित है, काशी ही जिनका मन्दिर (घर) है जो सारे ब्रह्माण्ड के गुरु है वे शिवजी सदा मङ्गल करें।

काशी – ध्यान

कोटिसूर्यप्रतीकाशं विराड्रूपां सनातनीम् ।
सहस्रबाहुचरणान्ध्यायेत् काश्यधिदेवताम् ।।

करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित विराट रूपवाली सनातनी और हजारों बाहुओं और चरणों वाली काशी की अधिष्ठात्री देवी का ध्यान करना चाहिये ।

श्यामां षोडशवार्षिकीं सुकरुणामूर्तिं दधाना वरं
हस्ताभ्यामभयं चहुँविश्वजननी विश्वेति सा गीयते ।
या दृष्टा स्मरणङ्गताऽपि सततं या कीर्तिता संस्तुता
या स्पृष्टा नृभिरात्मतत्वममलं दद्याद्ध्रुवं काशिका ।।

(काशीरहस्य अ० १०८)

श्यामवर्ण से युक्त, सोलह वर्ष की अवस्थावाली, अत्यन्त करुणामयी मूर्ति को धारण करने वाली दोनों हाथों से वर तथा अभय धारण करने वाली सम्पूर्ण जगत की माता, जिसे विद्यास्वरूप कहा गया है, जिसके दर्शन करने से, स्मरण करने से, कीर्तन करने से, स्तुति कस्ने से एवं स्पर्श करने से वह काशिका मनुष्यों को निर्मल आत्म-तत्व प्रदान करे ।

जयति जयति काशी काशितज्ञानराशिः
शिवहरिरविधातृ-श्रीगणेशाम्बिकानाम् ।
निवसति भुवि काश्यां तां भजध्वं भजध्वं,
स्मरत नमत शुद्धां शुद्धये कीर्तयध्वम् ।।

प्रकाश स्वरूप जो ज्ञान उसकी राशी रूप काशी शिव, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा, गणेश पार्वती की निवास भूमि सबकी जननी काशी की जय हो, ऐसी काशी की सेवा करो, स्मरण और प्रणाम करो, शुभाशुभ दोष के निवृत्ति के लिए काशी का कीर्तन करो ।

काशी नाम की महिमा

काशीतिवर्णद्वितयं स्मरंस्त्यजति पुद्‌गलम् ।
यत्र क्वापि भवेत्तस्य कैलासे वसतिः स्फुटा ।।
काशी काशीति काशीति रसहा रससंयुता ।
यस्य कस्यापि, भयश्चेत्सरसज्ञो न चेतरः ।।
तावद्‌गर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यलम् ।
यावन्नाम न गृह्णन्ति काश्याः पापाश्चलाशने ।।
ब्रह्महत्यादिपापानि यस्या नाम्नोऽपि कीर्तनात् ।
त्यजन्ति पापिनं काशी सा केनेहोपमीयते ।।
वाराणसीति कांशीति महामन्त्रभिमं जपन् ।
यावज्जीवं त्रिसन्ध्यन्तु जन्तुर्जातुन जायते ।।
तत्क्षेत्रनामस्मरणान्न स भूयोऽभिजायते ।
यस्तु काशीति काशीति द्विस्त्रिर्जपति पुण्यवान् ।।

अपि सर्वपवित्रेभ्यः स पवित्रतरो महान् ।

वाराणसीति काशीति रुद्रावास इति स्फुटम् ॥

मुखाद्विनिर्गतं येषां न तेषां प्रभवेद् यमः ।

येन बीजाक्षरयुतं काशीति हृदि धारितम् ॥ (स्कन्द पु.)

काशी का दो अक्षर का नाम स्मरण करता हुआ प्राणी जहां कहीं भी शरीर त्यागता है उसका कैलाश में वास होता है ।

काशी काशी रसरूपी माला से युक्त हो, जो भी हो, वही रसमय है दूसरा कोई नहीं है । ब्रह्महत्यादि पाप तभी तक गर्जना करते हैं जब तक वह काशी का नाम नहीं लेता ।

जिस काशी का नाम लेने से ब्रह्महत्यादित पाप पापी को छोड़ देते हैं, इसलिए ऐसी काशी की उपमा किससे दी जाय ।

वाराणसी- काशी इस महामन्त्र का जप करता हुआ तीनों सन्ध्याओं में जो जीता है वह फिर संसार में जन्म नहीं लेता है ।

जो काशी-काशी -काशी तीन बार जप करता है वह पुण्यवान है। दुनियाँ में जितने पवित्र क्षेत्र हैं उन सब में अतिपवित्र वाराणसी- काशी का रुद्रवास यह मुख्य है ।

जिसके मुख से काशी यह नाम निकला जिसने इस बीजाक्षर काशी को हृदय में धारण कर लिया फिर उसके ऊपर यमराज का प्रभाव नहीं होता ।

सेइय सहित सनेह देहभरी कामधेनु कलि कासी ।

शमनि शोक सन्ताप पापरुज सकल सुमंगल रासी ॥

मर्य्यादा चहुँ ओर चरणवर सेवत सुरपुरवासी ।

तीरथ सब शुभ अङ्गरोम शिवलिङ्ग अमित अविनासी ॥

अन्तर अयन अयन भल मनफल बच्छ वेद विश्वासी ।

गलकम्बल वरुणा विभाति जनुलूम लसति सरितासी ॥

दण्डपाणि भैरवविषाण मल रुचिखलगण मन दासी ।
लोलदिनेश विलोचन लोचन करणघण्ट घण्टासी ।।
मणिकर्णिका वदनशशि सुन्दर सुरसरि सुख सुखमा-सी ।
स्वारथ परमारथ परिपूरण पञ्चक्रोश महिमा-सी ।।
विश्वनाथपालक कृपालुचित लालति नितगिरिजा-सी ।
सिद्धिशचीशारद पूजतमन जोगवत रहति रमा-सी ।।
पञ्चाक्षरी प्राणमुदमाधव गव्यसुपञ्चनदासी ।
ब्रह्मजीव सम रामनाम दोउ आखर विश्वविकासी ।।
चारितुचरित करम कुकरमकरि मरत जीवगणघासी ।
लहत परमपदपथपावन जेहि चहत प्रपञ्च उदासी ।।
कहत पुराण रची केशव निजकर करतूति कलासी ।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भयो चाह सुपासी ।। (तुलसी)

यह चीर प्रसिद्ध अवमुक्तक्षेत्र यह प्रज्ञाचक्षु प्रकाशी है ।
यह मुक्ति ज्ञान की राशी है, प्रख्यात शिवपुरी काशी है ।।
शिव मन्दिर है अभी राम यहाँ, देवालय विविध ललाम यहां ।
है खुला ज्ञान भण्डार यहां, उन्मुक्त मुक्ति व्यापार यहां ।।
वितरित होता है ज्ञान यहां, है ध्येय मोक्ष का ध्यान यहां ।
है अध्यात्मिक उत्थान यहां, शास्त्रीयवाद प्रतिवाद यहां ।।
अध्ययनपीठ यह है महान आध्यात्म ज्ञान करती प्रदान ।।
विकसित विवेक विज्ञान हुए, लाखों पारङ्गत ज्ञान हुए ।।

कलिकलुष मोह अघ नासी है, रक्षक इसका अविनाशी है ॥
बम-बम हर-हर का नाद यहां, मिट जाते स्वतः विषाद यहां ॥
यह विश्वनाथ की काशी है ।

यह प्राचीन प्रसिद्ध अविमुक्त क्षेत्र है, यह ज्ञान प्रकाश को देनेवाली है। मुक्ति ज्ञान का खजाना है। प्रसिद्ध शिव की पुरी यह काशी है। सुन्दर शिव का मन्दिर और सुन्दर नाना प्रकार के देवालय भी है। ज्ञान का इतना प्रचुर भण्डार है कि जिसके कारण मुक्ति का व्यापार खुला हुआ है। भगवान की कृपा से यहां ज्ञान वितरित होता है क्योंकि यहाँ मोक्ष प्राप्ति का ध्येय प्रधान है। यहाँ आध्यात्मिक उत्थान निरन्तर होता है। शास्त्रीय विचार निरन्तर होता रहता है। यहाँ विवेक विज्ञान इतना विकसित हुआ कि लाखों लोग ज्ञान प्राप्ति करके मुक्त हो गये कलियुग रूपी पाप के नाश के लिए एक मात्र उपाय काशी का सेवन है। इसकी रक्षा करने वाले अविनाशी विश्वनाथ हैं। यहाँ का मुख्य नारा बम-बम हर-हर है जिसकी ध्वनि सुनते ही लोगों के सारे विषाद मिट जाते हैं। यह विश्वनाथ की नगरी सारे जग से न्यारी है।

काशी के महत्वपूर्ण देवता

काश्यां वै भैरवो देवः संसारभयनाशनः।
अनेकजन्मजं पापं स्मरेणात विनश्यति ॥

वाराणस्यां पूर्वभागे व्यासो नारायणः स्वयंम् ।
तस्य स्मरणमात्रेण अज्ञानी ज्ञानवान्भवेत् ॥

वाराणस्यां परे भागे भीमचण्डी महासती ।
तस्याः स्मरणमात्रेण विजयी भवति सर्वदा ॥

वाराणस्यामुत्तरे तु सुमन्तुर्नाम वै द्विजः ।
तस्य स्मरणमात्रेण निर्धनो धनवान् भवेत् ।।
वाराणस्यां दक्षिणे तु कुक्कुटो नाम वै द्विजः।
तस्य स्मरणमात्रेण दुःस्वप्नः सुखदो भवेत् ।। (का. खं.)

संसार के भय को नष्ट करनेवाले भैरव नाम के देवता हैं । मनुष्य के अनेक जन्म का उत्पन्न पाप स्मरण मात्र से नष्ट हो जाता है । वाराणसी के पूर्व विष्णु स्वयं व्यासनारायण है, उनके स्मरण मात्र से अज्ञानी भी ज्ञानवान हो जाता है । वाराणसी के पश्चिम भाग में भीमचण्डी महादेवी है उनके स्मरण मात्र से सदा विजय होती है। वाराणसी के उत्तर भाग में सुमन्तु नाम के ब्राह्मण थे उनके स्मरण मात्र से निर्धन भी धनवान हो जाते हैं । वाराणसी के दक्षिण भाग में कुक्कुट नाम के ब्राह्मण थे उनके स्मरण मात्र से बुरे स्वप्न भी सुखदाई हो जाते हैं ।

विष्णुविश्रामभूमिश्च शिवविश्रामभूमिका ।
ऋषयोदेवगन्धर्वा यत्र विश्राममागताः।।
पूर्णा अपि रमन्तेऽत्र पञ्चक्रोशात्मके स्थले ।
अपूर्णानां वराकाणां रतिरन्यत्र पापतः।।
जीवन्देहङ्काशिकाङ्कर्तुंभिच्छन्कुर्यादेतन्नातिविन्नृणां हि ।
देहः काशीकाशिकादेहरूपा तस्य प्रोक्ता यो विरक्तःसदाऽऽस्ते ।।

(का. खं. अ. १००)

जो काशी है वह विष्णु और शिव की विश्रामभूमि है इसीलिए इसमें ऋषि, देवता, गन्धर्व विश्राम के लिए आए पञ्चक्रोशात्मक इस स्थल में आनन्द लेते हैं ।

किन्तु जो अपूर्ण है, विषयी है वह पाप के कारण अन्यत्र निवास करते हैं, इसलिए जीते जी काशी को प्राप्त करने की इच्छा करना चाहिए। देह ही काशी है और काशी ही देह रूप है कौन सा आश्चर्य है, ऐसा विरक्त लोग कहते हैं और यहाँ सदा रहते हैं।

काशिश्रीमतिसर्वकर्मशमनी स्वाभाविकी काचन।
प्रत्यक्ष तव शक्तिरस्ति महती मातर्महीमण्डले ॥

हे काशी माता आपमें एक ऐसी अपूर्व स्वाभाविक शक्ति प्रत्यक्ष दिखाई देती है जो जीव के द्वारा किये गये सभी शुभ-अशुभ कर्मों को शान्त कर देती है, इस भूमण्डल में ऐसी शक्ति और कहीं नहीं जान पड़ती है।

काशी शब्द की व्युत्पत्ति

काश्ते इति काशी, काशाः ब्रह्मतत्वप्रकाशाः यस्यामवस्थायां सा। अत्र काशृदीप्तौ धातुः।

काशदीप्ति या प्रकाश को कहते हैं। कौन सा प्रकाश ब्रह्मतत्व का प्रकाश या ब्रह्मज्ञान है। जैसा श्रुति ने जीवों की महत्वाकांक्षा की उत्थापना की है।

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।
अर्थात् असत् से मुझे सत् में ले चलो, अन्धकार से उजाले में तथा मृत्यु से अमृत में।

"काश्यते प्रकाशते सर्व विधं ज्ञानं यस्यां सा काशी।"

अज्ञान को दूर कर सर्व प्रकार के ज्ञान को देने वाली काशी है।

काशस्वरूपा काशीयं काश्यन्त्वन्यज्जगत्त्रयम् ।
हिरण्यगर्भशक्राद्याब्रह्मांशा जीवराशयः ॥२५॥

यह काशी प्रकाश स्वरूप है हिरण्यगर्भ (विष्णु) इन्द्रादि ब्रह्मा के अंश स्वरूप जीव समूह तीनों जगत् को प्रकाशित करती है ।

काशतेऽत्र जगज्ज्योतिरनारव्येयमपीश्वरः ।
अतो नामान्तरं चास्तु काशीति प्रथितं भुवि ।।

(१) जिस नगरी में स्वप्रकाश चैतन्य का प्रकाश होता है, उसे काशी कहते है । (२) जिसमें शरीर त्याग मात्र से जीव शिवरूप होकर प्रकाशित होता है उसे काशी कहते हैं । (३) जो नगरी कर्म का कर्षण करती है उसे काशी कहते हैं ।

काशतेऽत्र यतोज्योतिस्तदनारव्येयमीश्वरः ।
अतो नामापरं चास्तु काशीति प्रथितं विभो ।।

जिसमें जिससे ज्योति प्रकाशित होती है उसका वर्णन ईश्वर भी नहीं कर सकते इसलिए इसका दूसरा नाम काशी प्रसिद्ध हुआ ।

प्रापयामास तां गङ्गा दैलीपिः पुरतश्चरन् ।
निर्वाणकाशनाद् यत्र काशीति प्रथिता पुरी ।।

जिस भागीरथ ने तपस्या करके गङ्गा को लाए, जहाँ मोक्ष का प्रकाश होता है, उसे काशी पुरी कहते हैं ।

एक बार गङ्गा के तट पर ऋषिलोग बैठकर तपस्या कर रहे थे । उन्हें चारों ओर एकाएक अचानक प्रकाश दिखाई दिया जिसे देखते ही काश-काश चिल्लाने लगे, काश याने प्रकाश ।

ऋषियों को सर्वप्रथम यहीं प्रकाश दिखा इसलिए इसका नाम काशी पड़ा। सूर्य शक्ति और जल शक्ति के गहन ग्रहण हेतु 'तेजोसि तेजोमयि देहि, बलम् असि बलम् मयि देहि' मन्त्र का उच्चारण करते हुए इडा पिंगला के मध्य से सुषुम्ना नाड़ी की ध्यानावस्थित ब्रह्मचक्र में पहुँचाकर योग में लीन अवस्था में एक दिन उदित प्रकाश अचानक चारों ओर ब्रह्मज्ञान का पहला प्रकाश दिखा, कालान्तर में यही काशी शब्द की व्युत्पत्ति कही गयी ।

आध्यात्मिक काशी

काशीपुरी का निर्माण, बनावट एवं इस पुरी के अन्तर्गत क्षेत्रों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उपर्युक्त शारीरिक, आध्यात्मिक षट्चक्र के विन्यास जैसा ही उन क्षेत्रों का भी विन्यास है । यथा ब्रह्मनाल (स्वाधिष्ठान-चक्र) मणिकर्णिका (मणिपुर-चक्र) चक्रपुष्करिणी, पञ्चक्रोशी शरीरस्थ पञ्चक्रोश-अन्नमय-प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय।

इत्यादि अनेक क्षेत्रों की समानता आध्यात्मिक क्षेत्रों जैसी प्रतिभाषित होती है। चक्रतो आध्यात्मिक शरीरान्तर्गतव्यवस्थित है और काशी क्षेत्र आधिभौतिक रूप से बाहर विद्यमान है ।

काश्या लिङ्गनामधेयत्वे विचारवर्णनम्

अखण्डं लिङ्गमेकङ्कि काशीति परिगीयते ।
पञ्चक्रोशात्मकं सूत स्त्रीनाम्ना प्रथितिङ्गतम् ।।१।। (काशीरहस्य, १७)

भगवान का ज्योतिर्लिङ्ग पञ्चक्रोशात्मक 'काशी' इस स्त्रीलिङ्ग के नाम से क्यों प्रसिद्ध हुआ ऋषियों के पूछे हुए–प्रश्न का उत्तर देते हुए शिवजी ने कहा – काशी के विषय में जिसको सूतजी ने प्रतिपादन किया।

यह ज्योतिर्लिङ्ग – शिवशक्त्यात्मक है यह वेदों में प्रसिद्ध है । योनिकारण बीजशक्ति और ज्योतिर्लिङ्ग शिव है । प्रकृति एवं पुरुष के ये रूप पुराणादि में प्रसिद्ध हैं ।

शिव ही परमात्मा ब्रह्म शिव हरि व परब्रह्म नाम से एवं शक्ति माया, अविद्या, विद्या आदि नाम से प्रसिद्ध है । कोई इसे अविमुक्त, पञ्चक्रोश क्षेत्र, रुद्रावास, विष्णुवास और वाराणसी नाम से कहते है ।

परन्तु यह एक ही पूर्ण सच्चिदानन्द सदा शिव के सनातन ज्योतिर्लिङ्ग का वाचक है ।

भगवान् शंकर ने एकबार अपनी शक्ति चैतन्यरूपिणी अर्धनारी को अपने शरीर से अलग कर दिया। तत्पश्चात् पार्वती ने देखा कि भगवान् भोले नित्य काशी की बड़ी प्रशंसा किया करते हैं क्यों न मैं काशी देवी क्षेत्र रूप धारण करूँ यही काशी नाम से विख्यात हुई और शिव के वरदान से क्षेत्र स्वरूपिणी अधिष्ठात्री देवता हुई ।

पश्चिमाभिमुख गङ्गाकेशव के सान्निध्य में यह अविमुक्तेश्वर का स्मरण करती हुई सनोतन काल से उसी रूप में प्रकाशित है ।

जो भक्ति से द्वादशी को प्रात:काल उठकर गङ्गास्नान कर काशी देवी का पूजन करता है उसकी बुद्धि पाप में नहीं लगती और चतुर्विध सृष्टि के प्राणी काशी में ही मुक्ति प्राप्त करते हैं इसमें कोई संदेह नहीं है । फिर भगवान् शंकर ने काशी माहात्म्य को कहते हुए एक बार कलिकाल में धर्म वार्ता से रहति प्राणि-वर्ग का काशी क्षेत्र में वास करने मात्र से उद्धार देख देवगण विश्वनाथ के पास आये और

सर्वपापनाशिनी इस पुरी के विरुद्ध शिकायत की। तब ब्रह्माजी के प्रश्न पर भगवान शंकर ने कहा कि इस विलक्षण पुरी की क्षमता ही ऐसी है कि यह समस्त पापों को अपने शरण में आए हुए व्यक्ति से छुड़ा देती है।

इसको प्रत्यक्ष देखने के लिए जब देवगण शंकर के साथ वहाँ आये तो दीन बदन म्लानमुखकान्ति वाली मूर्ति रूपा कशी भी वहाँ आईं और शंकर से अपने अभियोग कहने लगी कि भगवान् आपकी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए अब तक तो सबका निस्तार आपकी कृपा से किया गया है अब घोर कलिकाल आ जाने से मैं आपकी शरण में आई हूँ आप जो उचित हो सो करें। इस पर भगवान् शंकर ने सम्पूर्ण नियम काशी को सुनाया और कहा कि काशी के बाहर के पापों का निस्तार काशी सेवन से होता है परन्तु काशी में किये गये पापों की तो यातना से ही नाश किया जा सकता है। ऋषियों द्वारा यह पूछे जाने पर कि काशी में कलि का प्रवेश है ही नहीं तो यहाँ पर रहने वाले प्राणियों को कलि क्यों बाधा देता है। इस पर सूत जी बोले कि कलिका प्रवेश काशी में नही होता बल्कि प्राणी के पूर्व जन्मार्जित संस्कारों के बस से उसमें वासना का उदय होता है। शुभ वासनाएँ पुण्य जनक होती है और अशुभ वासनाएँ पाप जनक, अशुद्ध बुद्धि ही कलि नाम से कही गयी है इससे दूर रहने वाले व्यक्ति की शुद्ध निर्मल बुद्धि होकर भगवती काशी की कृपा से विश्वेश्वर एवं भगवती के चरणो में दृढ़ निष्ठ होकर परम पद की प्राप्ति होती है।

मुक्ति जन्म महि जान ज्ञान खानि अघ हानिकर,
जह बस शम्भु-भवानि सो काशी सेइय कस न ।
जरत सकल सुर-वृन्द विषम गरल जेहि पान किय,
तेहि न भजति मति-मन्द को कृपाल शङ्कर सरिस ॥

(तुलसीकृत रा०)

काशी क्षेत्र में मोक्ष का रहस्य

शृणु देवि परं गुह्यं क्षेत्रे-स्मिन्मुक्तिकारणम् ।

इदं विदन्ति नो वापि ब्रह्मनारायणादयः ।।

यन्नामाकर्णनादेव क्षीयन्ते पापराशयः ।

प्राप्यते पुण्यसम्भारः काश्यां निर्वाणकारणम् ।।

हे देवी इस काशी क्षेत्र में मुक्ति के कारण को सुनो इस रहस्य को ब्रह्मा नारायण आदि नहीं बता सकते जिस काशी के नाम से पाप की राशियाँ क्षीण हो जाती है और पुण्य करने से काशी में मोक्ष प्राप्त होता है ।

जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत श्रुति सकल पुरान ।

सो गति मरनकाल अपने पुर, देत सदा शिव सबहि समान ।।

(विनय पत्रिका)

जो मुक्ति सन्त और बड़े-बड़े मुनियों को भी दुर्लभ बताते हैं, उसे भगवान् शङ्कर काशी पुरी में मरने वाले को अनायास दे देते हैं, समान रूप से ।

जोग कोटि करि जो गति हरि सों, मुनि मांगत सकुचाहीं ।

वेद विदित तेहि पद पुरारि पुर, कीट पतंग समाहीं ।।

बड़े - बड़े मुनि अनेक प्रकार का योगाभ्यास करके भी भगवान विष्णु से जिस मोक्ष को माँगने में संकोच करते हैं वही गति सदाशिव काशी में कीट-पतंग सब को अनायास देते है ।-

सर्वं सविघ्नम्मोक्षाय साधनाङ्कशिकां बिना ।

काशी निर्विघ्नजननी काशी मोक्षस्य सत्खनिः।।८३।।

(काशी रहस्य अ. १३)

काशी के बिना सभी साधन मोक्ष के विघ्न हैं काशी निर्विघ्नता की जननी है और काशी मोक्ष की खान है।

यथा प्रियतमा देवि मम त्वं सर्वसुन्दरि ।

यथा प्रयितरं चैतन्मे सदानन्दकाननम् ।।

जैसे हे पार्वती तुम मेरी प्रियतमा और सुन्दरी हो उसी प्रकार यह मेरा आनन्द कानन भी प्रिय और सुन्दर है।

काशी क्षेत्र की सीमा

मध्यमेश्वरमारभ्य यावद् देहलिविघ्नपम् ।
सूत्रं बद्ध्वा चतुर्दिक्षुभ्रामयेन्मण्डलाकृतिम् ।।
तत्र या जायते रेखा तन्मध्ये क्षेत्रमुत्तमम् ।
काशीति च विदुर्वेदास्तत्रमुक्तिः प्रतिष्ठा ।। (पद्मपुराण)

मध्यमेश्वर में कील गाड़कर उसमें धागा बांधकर देहली विनायक ले जाये वहाँ से धागे को गोलाकार घुमावें जो क्षेत्र उस मण्डल के अर्न्तगत आये उसे काशी के उत्तम क्षेत्र कहे गए है।

असी वरुणा की उत्पत्ति

असीवरणयोर्नद्योरुत्पत्यादौ च सङ्गमम् । (वामनपुराण)

प्रयाग में भगवान् विष्णु उपविष्ट हैं उनके दक्षिण और बाम चरण से वरणा एवं असी नदियां उत्पन्न हुई जो काशी क्षेत्र की सीमा से होकर गंगा में जा मिली है।

वाराणसी क्षेत्र की सीमा

द्वियोजनमतार्धं च तत् क्षेत्रं पूर्वपश्चिमम् ।
अर्धयोजनविस्तीर्णं दक्षिणोत्तरतः स्मृतम् ।।
वाराणसी नदी या च यावच्छुष्का नदी तु वै ।
भीमचण्डीकमारभ्य पर्वतेश्वरमन्तिके ।।
एतत्क्षेत्रस्य विस्तारः प्रोक्तो देवेन धीमता ।
वाराणसीतिविख्यातं तन्मानं निगदामि वः ।।

(मत्स्य पु० अ० १८३)

वाराणसी पूर्व पश्चिम ढ़ाई योजन (दस कोस) लम्बी तथा दक्षिणोत्तर आधा योजन (दो कोस) चौड़ी है । इसका विस्तार वरणा से शुष्क नदी असी तक बतलाया है ।

'दक्षिणोत्तरदिग्भागे कृत्वासिवरणां सुराः ।
क्षेत्रस्य पश्चिमे भागे तं देहलीविनायकम् ।।

उत्तर में वरण नदी दक्षिण में असी नदी, पश्चिम में देहलीविनायक और पूर्व में गंगा यही वाराणसी क्षेत्र की सीमा है ।

वरुणा के जल में अमृतत्त्व

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि तत्रामृतस्यासिक्तं तेनते वारये विषम् ।

(अर्थर्ववेद)

(वरणावत्या अधि) वरुणा नामक औषधि में रहने वाला (इदं बारवारयातै) यह जल विष को दूर करता है । (तत्र अमृतस्य आसिक्तं) वहाँ अमृत का स्रोत है (तेन ते विषंवान्ये) उससे मैं तेरा विष हटाता हूँ ।।१।।

वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या पुरी मम सदागिरिराजपुत्रि ।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपिपाक्षयाद्विरजसः प्रतिभान्तिमर्त्याः।।

(सनत्कुमारसंहिता अ० ४२)

वाराणसी तीर्थ अत्यन्त सुन्दर है और सुखरूप है। हे पार्वती अन्य जगहों में नाना प्रकार के पापादिक कर्म करने वाले काशी में आते हैं वे देशान्तर के पापों से रहित हो जाते हैं।

वाराणस्यां मृतो वापी इदं वा ब्रह्म यः पठेत् ।
एकेन जन्मना जन्तुर्मोक्षं च प्राप्नुयादिति ।।६।।

(प्राणाग्निहोत्रोपनिषद्)

वाराणसी में मनुष्य का मरण होने से एक जन्म में अवश्य मुक्ति होती है।

असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चक्रोशं महत्तरम् ।
अमरा मृत्युमिच्छन्ति का कथात्वितरै जनाः।।

(स्कन्द पु०)

असी और वरुणा के बीच में पञ्चक्रोश (काशीक्षेत्र) अतिशय श्रेष्ठ है क्योंकि उसमें देवता लोग भी जन्म लेकर मृत्यु चाहते हैं, तो मनुष्यों की क्या बात है ?

''संसारभयभीता ये ये बद्धाः कर्मबन्धनैः ।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः ।।

इसलिए कहा है जो संसार के भय से डरे हुए हैं और कर्मबन्धनों से जकड़े हुए हैं और जिनकी कहीं गति नहीं है उनकी गति वाराणसी है। जो वेद शास्त्रों के ग्यान से रहित हैं जो शौच आचार से रहित हैं, उनकी गति वाराणसी ही है।

वाराणसी के दक्षिण में असी नाम की नदी है और उत्तर में वरुणा नाम की नदी है इन दोनों नदियों के बीच में वाराणसी है। उसी का काम है कि जन्तुओं के शुभ-

अशुभ कर्मों को बाहर निकाल कर फेंक दे और वरुणा का काम है कि जीवों के कर्मों को जीव के साथ रहने से रोक दें। अर्थात्-वरुणा के प्रभाव से तो जीव के कर्मों का फल जीव के पास आने नहीं पाता और असी के प्रभाव से यदि कोई फल किसी प्रकार जीव तक पहुँच जाय तो वरणा उसे हटाकर दूर कर देती है।

इन दोनों नदियों के बीच में बसी वाराणसी अपनी ऊषरता के प्रभाव से जीवन के सब कर्म निश्शेष कर देती है, इसी से उस जीव की मुक्ति हो जाती है।

अतः एव वाराणस्याः श्रैष्ठ्यम् । एतदप्यभिहितं पद्मपुराणे ।

वाराणसी श्रेष्ठ पुरी है ऐसा भी पद्म पुराण में लिखा है।

शिवउवाच– **वाराणस्यां नदी पुण्या सिद्धगन्धर्वसेविता ।**
प्रविष्टा त्रिपथा गंगा तस्मिन् क्षेत्रे मम प्रिये ।।

सिद्ध गंधर्वो से सेवित पुण्य नदी वाराणसी जहाँ गंगा से मिलती है, हे प्रिये वह क्षेत्र मुझे प्रिय है। (मत्स्य पु० अ० ६-७)

मुक्तिदानमही सा मे वाराणस्यां महीयसी ।
तन्महीरजसा साम्यं त्रिलोक्यपि न चोद्वहेत् ।।९१।। (स्कन्द पु०)

मुक्तिदान की पृथ्वी वाराणसी में ही है अतः वाराणसी सर्वश्रेष्ठ है। उसकी रज (धूलि) की बराबरी त्रिलोक में भी कोई नहीं कर सकता है।

अन्तर्गृह क्षेत्र की सीमा

पूर्वतो मणिकर्णेशो ब्रह्मेशो दक्षिणे स्थितः।
पश्चिमे चैव गोकर्णो भारभूतस्तथोत्तरे ।। (काशीखण्ड)

पूर्व की ओर मणिकर्णिका तक, दक्षिण में ब्रह्मेश्वर तक, पश्चिम में गोकर्णेश्वर तक और उत्तर में भारभूतेश्वर तक इसकी परिसीमा कही जाती है।

गोकर्णेशः पश्चिमे पूर्वतश्च गङ्गामध्यमुत्तरे भारभूतः ।
ब्रह्मेशानौ दक्षिणे सम्प्रदिष्टौ तत्तु प्रोक्तं भवनं विश्वभर्तुः ॥

(स्कन्द पु०)

पश्चिम में गोकर्णेश्वर, पूर्व की ओर गंगा, उत्तर में भारभूतेश्वर, दक्षिण में ब्रह्मेश्वर जहाँ कहे गये हैं वही श्रीविश्वेश्वर भगवान् का निवास है ।

विश्वभर्तुर्भवनमन्तर्गृहम् ।

अन्तर्गृही को विश्वेश्वर का घर कहा गया है ।

यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः ।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तदेवाति विमुक्तिदम् ॥ (कूर्म पुराण)

अन्तर्गृही क्षेत्र में साक्षात् शिवजी जीव को मरण समय में ॐ (राम) तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं ।

अनिलो मृगनाभिरेणुगन्धिः, 'रधिकाशि प्रणवोपदेशकाले ।
हरते मरणश्रमं नराणां, हरवामार्द्धकुचोत्तरीयजन्मा ॥

मनुष्य के मरण समय भगवान् शिव उस प्राणी को अपनी गोद में रखकर तारक मन्त्र का उपदेश करने लगते हैं उस समय जगन्माता पार्वती कस्तूरी की गन्ध से सुगन्धित अपने आञ्चल की वायु से उसकी मरण समय की व्याकुलता दूर करने लगती हैं ।

विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ।
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारे न पुनर्भवेत् ॥६३॥ (लिंग पु०)

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि विषयासक्त प्राणी सब धर्मों से रहित होने पर भी इस क्षेत्र में मरने पर पुनः जन्म नहीं पाता ।

अविमुक्त क्षेत्र की सीमा

तस्या अन्तःस्थितं दिव्यं विशेषफलसाधनम् ।
अविमुक्तमितिख्यातं **तन्मानं च ब्रवीमि वः ॥**
विश्वेश्वराच्चतुर्दिक्षु **धनुःशतयुगोन्मितम् ।**
अविमुक्ताभिधं क्षेत्रं मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥

इस वाराणसी के मध्य में स्वर्गीय गुणों से युक्त विशेष फल को देने वाला सुप्रसिद्ध अविमुक्त क्षेत्र है, जिसकी सीमा का वर्णन इस प्रकार है।

विश्वेश्वर के मन्दिर के चारों तरफ दो सौ धनुष परिमाण स्थान को अविमुक्त क्षेत्र कहते हैं वहाँ मुक्ति होने में संदेह नहीं है ।

अविशब्देन पापस्तु वेदोक्तः कथ्यते द्विजैः ।
तेन मुक्तं मया जुष्टमविमक्तं मयोच्यते ॥४३॥ (लिंग पु० ९२)

विद्वान ब्राह्मणों द्वारा अवि शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है - अवि पाप को कहते है । जो पाप से मुक्त कर दे और जो क्षेत्र पाप से रहित है, इसी से इसका नाम अविमुक्त है ।

यत्तच्छिवानन्दमनन्तमाद्यं यदाऽऽवयोर्नित्यमभिन्नरूपम् ।
दृश्यं समस्तोपनिषत्सुभक्तैर्जानीहितेजस्तदहो विमुक्तम् ॥

(सनत्कुमार संहिता)

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि प्रिये जो शिव का कल्याण रूप, आनन्दमय अनन्त और सबके आदि व उपनिषदों से जानने योग्य है और हम तुम दोनों का नित्य और अभिन्न रूप तेज है, वही अविमुक्त काशी है ।

अविमुक्तं महत्क्षेत्रं पञ्चक्रोशपरिस्थितम् ।

ज्योतिर्लिङ्गं तदेकं हि ज्ञेयं विश्वेश्वराभिधम् ॥१३१॥ (का. ख. अ. २६)

पञ्चक्रोश परिमाण-अविमुक्त (काशी) नामक जो महाक्षेत्र है उसे एक विश्वेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग जानना चाहिए।

अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये ।

अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥३॥ (का. ख.)

अविमुक्त क्षेत्र में सब प्राणियों को मुक्ति देने की कामना से मैं पाषाण प्रितिमाओं के सान्निध्य में रहता हूँ।

मम क्षेत्रमिदं तस्माद् आविमुक्तमिदं स्मृतम् ।

मुने प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रं कदाचन ॥४५॥ (लिंग पु. अ. ९२)

हे मुनिवर जब प्रलयकाल आ जाता है तब भी कदाचित् पार्वती सहित मैं इस काशी का त्याग नहीं करता इसलिए भी इसका नाम अविमुक्त है।

ममक्षेत्र मिदं तस्मादंअविमुक्तमितिस्मृतम्।

नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करै ॥४५॥

स्नानात्संसेवनाद्वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः ।

इह संप्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते ॥४६॥ (लिंग पु. अ. ९२)

यह मेरा क्षेत्र अविमुक्त कहा जाता है। इसलिए मुक्ति यहाँ जिस प्रकार प्राप्त होती हैं उस तरह नैमिषारण्य, गंगा पुष्कर प्रयागादि क्षेत्र में भी नहीं प्राप्त होती है।

अविमुक्तं समासाद्य तीर्थसेवीकुरूद्वह ।

दर्शनाद्देवदेवस्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ (म०भा०व.प.८४/१८)

तीर्थ की सेवा करने वाला अविमुक्त को प्राप्त कर उनके दर्शन से ही ब्रह्म-हत्या से मुक्त हो जाता है ।

जगद्ब्रह्मविवर्तंहि वदन्ति श्रुतिमौलयः ।
काशीब्रह्मैव साक्षाद्धिविदुषां श्रुतिचक्षुषाम् ।।

वेद के जानने वाले कहते हैं कि जगत् ब्रह्म का विवर्त है (ब्रह्म के अज्ञानता के कारण जगत् आभास हो रहा है) वेद ही दृष्टि हैजिसकीवे विद्वान् साक्षात् काशी को ब्रह्म कहते हैं ।

अविमुक्तं तदेबाहुः काशीति ब्रह्मवादिनः ।
विमुक्ते न मया यस्मान्मोक्षते वा कदाचन ।। (लिंग पु०)

ब्रह्मवादी लोग इसको अविमुक्त तथा काशी भी कहते हैं । विशेष मुक्त रूप से मैं कभी कदाचन जिसको मोक्ष देता हूँ इसलिए यह मेरा अविमुक्त क्षेत्र कहा गया है।

काशीब्रह्मेतिविख्यातं तद्विवर्तो जगद्भ्रमः।
अविमुक्तं तदेवाहुः काशीति ब्रह्मवादिनः ।। (लिंग पु०)

इसलिए काशी ब्रह्म है उसका विवर्त जगत् है ब्रह्म को जानने वाले इसी को अविमुक्त और काशी नाम से पुकारते हैं ।

स्थूलादपि स्थूलतरा काशिका ब्रह्मरूपिणी।
यथा मनुष्यदेहेऽस्मिंश्छोषितेभाति वस्तुतः ।।

स्थूल से भी स्थूल काशी ब्रह्म रूपिणी है इस मनुष्य देह से विचार करने पर प्रतीत होता है अन्य प्रकार से नहीं।

अविमुक्तस्य माहात्म्यं षट्भिर्ववत्रैः कथं मया ।
वक्तुं शक्यं न शक्नोति सहस्रास्योऽपि यत्परम् ।। (का. खं. अ. २५)

षडानन कहते हैं कि जिस अविमुक्त क्षेत्र काशी का महात्म्य सहस्त्रमुख से अनन्त शेषजी भी नहीं कह सकते तो उसे इन छः मुखों से मैं कैसे कह सकता हूँ अर्थात् नहीं कह सकता। अतः यह वर्णानातीत है।

"अविमुक्तरहस्यज्ञा मुच्यन्ते ज्ञानिनो नराः।

अज्ञानिनोऽपि तिर्यञ्चो मुच्यन्ते हि सकल्मषाः ॥"

अविमुक्त क्षेत्र के रहस्य को जानने वाले ज्ञानी मनुष्य मुक्त हो जाते हैं।

"अविमुक्तं स्वयं लिङ्गं स्थापितं परमात्मना।

न कदाचित्वया त्याज्यमिदं क्षेत्रं ममांशकः ॥१॥ (ब्रह्मवैवर्त पु.)

परमात्मा शिव ने मुक्ति देने वाले ज्योतिर्लिङ्ग को स्वयं स्थापित किया और कहा हे मेरे अंश वाले ज्योतिर्लिङ्ग यह क्षेत्र तुमको कदापि नहीं त्यागना चाहिए।

अविमुक्त क्षेत्र की सार्थकता

अगस्त्य ऋषि बोले–हे स्कन्द वह अविमुक्त क्षेत्र कब से विख्यात हुआ कैसे मोक्षपद माना गया कैसे त्रिभुवन द्वारा पूजनीय हुआ? उस अविमुक्त क्षेत्र का नाम वाराणसी-काशी रुद्रावास कैसे हुआ? वह महाश्मशान कैसे कहा गया ? इत्यादि रहस्यों को भी आप बतलाकर मेरा मनस्तोष करें।'

अगस्त्य की कामना जानकर पार्वती-नन्दन स्कन्दजी बोले–हे कुम्भयोने! जैसे आपने अभी प्रश्न किये हैं वैसे ही किसी समय जगदम्बा मेरी माता ने पिता महादेव से पूछा था और जिस प्रकार उन्होंने उत्तर दिया था उसी प्रकार मैं तुमसे कहता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनो। महाप्रलय के समय में धरती, स्थावर, जंगम, सूर्य-तारा, चन्द्र चन्द्रिका से शून्य तपोमय थी। आकाश शून्य था।

रूप रस गन्ध-स्पर्श इत्यादि का कहीं भी पता न था। ऐसी भीषण परिस्थितियों में-सूचीभेदन अवकाश से रहित, मनसा, वाचा, कर्मणा से अगम-अगोचर 'तत्सतब्रह्म' इस वेद वाक्य से प्रतिपादित होनेवाला अद्वैत ब्रह्म मात्र ही था। स्थूलता, कृशता, ह्रस्वत्व-दीर्घत्व, लघुत्व-गुरुत्व से परे सत्यज्ञान अनंत ब्रह्म आनन्द परम-ज्योति थी। आकृतिहीन, अप्रमेय, अनघ, अविकारी, अनाधार, अगुण, अनामि, आरम्भहीन, अन्तरहित, मायाशून्य, विकल्पविहीन, एकमात्र अद्वैत ब्रह्म ही था। उस ब्रह्म को द्वैत की इच्छा जागृत हुई। उस निराकारने निज लीला विस्तार रूप (द्वैत) अपनी कल्पना साकार कर दी। शंकर ने पार्वती से कहा–'उसी निराकार ब्रह्म की साकार मूर्ति मैं हूँ। प्राचीन मतावलंबी विद्वद्गण एवं आधुनिकवर्ग दोनों ही मुझे इस रूप में स्मरण करते हैं। मैंने स्वच्छन्द विचरण करते हुए निज शरीर से एक अत्याभिचारिणी मूर्ति का सृजन किया। मेरी परम प्रधान प्रकृति-गुणसंपन्ना, विकारवर्जिता, उत्कृष्ट माया रूपा वह मूर्ति तुम हो। हे शक्तिमती! तुम्हारे साथ मैंने (आदि पुरुष ने) ही इस (काशी) का निर्माण किया है।'

'हे घटोद्भव पंचक्रोश प्रमाण परिवेश से पूर्ण यह क्षेत्र प्रलयकाल में भी विमुक्त नहीं होता इसलिए अविमुक्त संज्ञा से विभूषित है। यह क्षेत्र मुक्तिपद-प्रद होने से भी अविमुक्त कहा गया है। आनंद का धाम होने से पिनाकी ने इसका नाम आनन्दकानन रखा है। इस आनन्दकानन में यत्र-तत्र संचित शिवपिण्डिकाओं को आनन्दकन्द बीज के अंकुरवत् जानना चाहिए।

कार्तिकेय ने कहा- 'हे मुने! अविमुक्त क्षेत्र इस लोक में परम गुह्य है। क्योंकि वहाँ सर्वसिद्धिसंयुत शिव निवास करते हैं। वह आकाशस्थपुरी है। योगीजनों की दृष्टि में ही गम्य है। जो प्राणी संयतात्मा होकर यहाँ निवास करता है वह त्रिकालभोजी होकर भी वायुभोक्ता ऋषि की संज्ञा प्राप्त करता है। निमेष-मात्र भी भक्तियुत इस क्षेत्र का निवास बड़ी से बड़ी तपस्या के फल को देता है।' (का. ख.)

काश्याम्मरणान्मुक्तिः

सनातन वैदिक धर्म में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चार पुरुषार्थ बतलाये हैं। इनमें अन्तिम मोक्ष फलरूप होने से प्रधान है। विद्वान लोग आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति को मोक्ष मानते हैं। अर्थात् आत्यन्तिक एकविंशति दुःख ध्वंस ही मोक्ष है।

दुःख २१ प्रकार के हैं १-शरीर, ६-इन्द्रिय, ६-विषय, ६-प्रकार के ज्ञान, सुख और दुःख इन सबसे निवृत्ति ही मोक्ष है।

ज्ञानान्मुक्तिः / ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः

अर्थात् ज्ञान होने पर ही मुक्ति होती है। बिना ज्ञान प्राप्ति के मुक्ति नहीं होती। ज्ञान हो जाने पर (काश्याम्मरणान्मुक्तिः) काशी मे मरने से मुक्ति होती है।

ब्रह्मज्ञानेन मुच्यन्ते नान्यथा जन्तवः क्वचित्।
ब्रह्मज्ञानमये क्षेत्रे प्रयागे वा तनुत्यजाः ॥११५॥ (का. खं. अ. ३२)

अर्थात् जीव मात्र ब्रह्मज्ञान होने से मुक्त होते हैं। प्रयाग तीर्थ हो अथवा यह ब्रह्मज्ञानक्षेत्र काशी हो, बिना ब्रह्मज्ञान के कहीं भी मुक्ति नहीं हो सकती।

चतुर्धा वितते क्षेत्रे सर्वत्र भगवाञ्छिवः।
व्याचष्टे तारकं वाक्यं ब्रह्मात्मैकप्रबोधकम् ॥ (ब्रह्म पु.)

इस क्षेत्र में चारों ओर भगवान् शिव ब्रह्मैकत्व को बताने वाले तारक मन्त्र का उपदेश देते हैं।

काशीवाराणस्यविमुक्त्यन्तर्गृहाख्यक्षेत्रचतुष्टयं क्रमेणेति-

मतान्तरम् - अन्येतु क्षेत्रभेदेन सालोक्यादिमुक्तितारतम्यम्।

काशी, वाराणसी, अविमुक्त क्षेत्र, अन्तर्गृह ये चार क्षेत्र क्रम से हैं। **दूसरे क्षेत्रभेद** मत से सालोक्यादि मुक्तियाँ मिलती हैं, ऐसा क्रम बतलाते हैं।

एतदप्युक्तं ब्रह्मपुराणे -चतुर्विधेऽपि क्षेत्रेऽस्मिन्प्रमीतो गर्भयातनाम्-

नैवाप्नोति मुनिश्रेष्ठ विशेषोऽयं ब्रवीमि वा ।। (ब्रह्म. पु.)

ब्रह्मपुराण में यह भी कहा गया है– हे मुनिवर उक्त चारों प्रकार के क्षेत्रों में रहने वाले मनुष्य पुनः गर्भयातना में नहीं पड़ते, यह यहाँ की विशेषता है ।

वाराणस्यात्मके क्षेत्रे सारूप्यमुक्तिः । अविमुक्तात्मके क्षेत्रे सान्निध्यमुक्तिः। अन्तर्गृहात्मके क्षेत्रे कैवल्यमुक्तिः । उक्तं च – पद्मपुराणे

चतुर्धा वितते क्षेत्रे सर्वत्र भगवाञ्छिवः । व्याचष्टे तारकं वाक्यं ब्रह्मात्मैक्यप्रबोधकम् ।। (पद्म. पु.)

वाराणसी क्षेत्र में सारूप्यमुक्ति, अविमुक्त क्षेत्र में सान्निध्यमुक्ति और अन्तर्गृह में कैवल्यमुक्ति होती है । पद्मपुराण में भी कहा है–चार प्रकार से फैले हुए इस काशी क्षेत्र में सब जगह भगवान् शिव ब्रह्म ज्ञानदायक तारक मन्त्र का उपदेश देते है ।

यत्राचार्यस्त्रिपुरविजयी साधनानां चतुर्णां
सम्यक्सद्यः सुलभमशनं स्वैरचारस्तपांसि ।
धन्यम्मन्याः श्रुतिरपि तपः श्रूयते जन्मभाजां
काले काश्यां सुकृतधनिकास्तत्र वासं लभन्ते ।।

(सनत्कुमार संहिता)

काशीपुरी में त्रिपुर को जीतने वाले साक्षात शंङ्कर भगवान् ही तारक मन्त्र के उपदेश देने वाले आचार्य है । शिव ने अपनी प्रतिज्ञा राम को बतलाकर वरदान मांगा–

स्थिरा काश्यामिहैवैकाप्रतिज्ञा हि मया कृता ।
अत्रैव मृतमात्राणांतिरश्चामपि देहिनाम् ।।
भक्तानामप्यभक्ताना पुण्यपापात्मनामपि ।
मुक्तिं दास्यामि सर्वेषां भक्तानामेव सर्वदा ।।

(का. खं.)

शिवजी ने राम से कहा कि मैंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि इस काशीपुरी में मरने वाले सभी मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि को चाहे वे भक्त हों या नहीं, पुण्यात्मा हों अथवा पापी अवश्य मुक्ति दूंगा। प्राणिमात्र के मुक्ति हेतु आप यहीं वरदान दीजिये दूसरा नहीं।

मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः।

म्रियते देहि तज्जन्तोर्मुक्तिर्नतो वरान्तरम् ॥१॥

(रामतापनी उपनिषद्)

शंकर ने राम से कहा–हमारे काशी क्षेत्र में मणिकर्णिका और गङ्गा तट पर मरने वाले प्राणियो की मुक्ति हो। तब राम ने शिव से कहा–

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।

उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्र स मुक्तो भविता शिवः ॥

हे शिव! मरते हुए प्राणी के दाहिने कान में आप तारक मंत्र रामनाम का उपदेश दीजियेगा जिसके प्रभाव से प्राणी मुक्त हो जायेगा। प्राणियों के साथ साथ।

क्षेत्रेऽस्मिंस्तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः।

कृमिकीटादयोप्याशु मुक्तास्सन्तु न चान्यथा ॥२॥

(रामतापनी, ३०)

रामजी ने शिवजी से कहा–आपके काशी क्षेत्र में कहीं भी मरने वाले कृमि, कीट, पशु, पक्षी और सभी को मोक्ष होगा। ऐसा कहकर राम ने शिव को विष्णु के पास भेजा।

उद्धरिष्यामि च महीं वाराहं रूपमस्थितः।

तथा पुनः पृथिव्यां हि काशीस्थास्यतिमत्प्रिया ॥

इत्युक्त्वा ऋषिमुख्येभ्योभगवानादि शूकरः ।

उद्धधारमहादेवो महीं मग्नां महाम्भसि ॥

एकीकृत्वा काशिकयापुनर्जीवानमोचयत् ।

यस्यां स्थावरजङ्गमा जडधियः सुज्ञाः सुधर्मान्विताः ॥

पापाश्चैव सदाशिवेन मिलिता जीवा भवन्ति ध्रुवम् । (वा.पु.)

भगवान् विष्णु ने शिव से कहा–मैं वराह रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार करूँगा । तब मैं अपनी प्रिया काशी को फिर पृथ्वी पर स्थापित करूँगा । इस तरह से आदि सूकर भगवान् ने जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार करके काशी और पृथ्वी को एकाकार कर दिया फिर भगवान शंकर ने काशी में मोक्ष देना आरंभ किया ।

जिस काशी में स्थावर–जंगम, जड़–जीव और विद्वान् धार्मिक बुद्धिवाले एवं पातकी भी सदाशिव से मिलकर ब्रह्म रूप हो जाते हैं ।

भूमिष्ठापि न यात्रा भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरघः स्थापि या ।

यावद्वा भुवि मुक्तिदास्युरमृतं यस्यां मृता जन्तवः ॥ (स्कन्द पु.)

काशी का पृथ्वी से सम्बन्ध नहीं है । वह स्वर्गलोक से उच्चतर है । जागतिक सीमा से आबद्ध होने पर भी मोक्षदायिनी है यहां मरने वालों को मुक्ति देती है ।

निष्प्रत्यूहेन योगेन नाना जन्मार्जितेन च ।

यत्फलं लभतेऽन्यत्र तत्काश्यांत्यजतस्तनुम् ॥३३॥ (का. खं. अ. २६)

अन्य स्थानों में अनेक जन्मार्जित निर्विघ्न योग के द्वारा जो फल प्राप्त किया

जाता है, वह फल काशी में केवल शरीर के त्याग मात्र से मिल जाता है ।

विश्वेश्वरस्य देवस्य काशीनाम्ना महापुरी ।

यत्र पापी मृतः सद्यः परं मोक्षं प्रयाति हि ।। (गर्ग संहिता

यह काशी विश्वनाथ जी की महापुरी है । जहाँ पर प्राण छोड़नेवाला प्राणी उत्त

मोक्ष को प्राप्त करता है ।

विश्वेश्वरो यत्र न तत्र चित्रं धर्मार्थकामा मृतरूपरूपाः ।

स्वरूपरूपःसहि विश्वरूपस्तस्मान्न काशीसदृशी त्रिलोकी ।।९८।।

(का. खं. ३

जहाँ पर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने के लिए मूर्तिमान होकर भगवा

विश्वनाथ स्वयम् विराजमान हैं, वहाँ पर (मुक्तिलाभ) यह कौन से आश्चर्य की बात

क्योंकि त्रैलोक्य भी काशी के समान नहीं है ।

विश्वेशोमुक्तिदो नित्यं मुक्त्यै चोत्तरवाहिनी ।
आनन्दकानने मुक्तिर्मुक्तिर्नाऽन्यत्र कुत्रचित् ।।

शिवजी प्रतिदिन मुक्ति देते हैं, उत्तरवाहिनी गंगा मुक्ति देती है और आन

कानन काशी मुक्ति देती है, इसके अतिरिक्त और कहीं मुक्ति नहीं मिलती ।

कृष्णद्वैपायनोऽप्येवं शम्भुर्वक्ष्यति नान्यथा ।

यत्र विश्वेश्वरः साक्षान्मुक्तिस्तत्र पदे पदे ।।३६।। (स्कन्द पु

कृष्णद्वैपायन (व्यास) के विचार से शिवजी के वाक्य अन्यथा नहीं है । क्यो

जहाँ विश्वेश्वर हैं वहाँ पद-पद में मुक्ति है ।।३६।।

वदन्त्यन्येऽपि मुनयस्तीर्थसंन्यासकारिणः ।

चिरन्तना लोमशाद्याः काशिका मुक्तिकाशिका ॥३७॥ (स्कन्द पु.)

अन्य मुनि लोग भी इस तीर्थ को सन्यासकारिणी बताते हैं। लोमश आदि मुनियों ने इसकी विशेषता वर्णित करते हुए कहा है कि काशिका वास्तव में मुक्ति काशिका है ॥३७॥

केषाञ्चिन्मतमाहकाशीमरणमिति । एतन्मते काशीमरणोत्तरं मृतदेहेतारकोपदेशात् । गङ्गाक्षिप्तमृतदेहवत् मृतदेहे काशीसम्बन्धात्तदात्मनि अदृष्टमुत्पाद्य शरीरान्तरे तत्त्वज्ञानात् मुक्तिरितिनिष्कर्षेभगवतस्तारकोपदेशस्य-मृतदेहे काशी सम्बन्धस्य च द्वयोरेकतरस्य एवमुत्क्रममाणेष्वित्यादिश्रुत्यर्थ-विरोधोऽपि । ननु तत्त्वज्ञाने मानसे जातिविशेषानङ्गीकृत-काशीमरणादीनां प्रत्येकं हेतुतत्वेगौरवमिति-तेषां यथासम्भवंसमुच्चितानामेकैव हेतुता, अभ्युपेया इत्यत आह काशीगङ्गेति । मथुरामरणादीनामित्यादिपदेन दोलायमानगोविन्द-दर्शनादिपरिग्रहः । (मुक्तिवाद ग.)

किसी किसी के मतानुसार काशी में मरण ही मुक्ति है। किन्तु कुछ मतावलम्बी यह मानते हैं कि काशी में मरण के बाद मृतदेह में भी तारक मंत्र के उपदेश से गङ्गा में डाल दिये गये उस शरीर का काशी से सम्बन्ध हो जाता है अर्थात् जिसकी मृत्यु काशी में नहीं होती है अन्यत्र कहीं भी मृत्यु हो जाय और उसका मृत शरीर काशी और गङ्गा के सम्बन्ध से मुक्त हो जाता है।

जिसका मृत शरीर काशी में आ जाता है वह गङ्गा और काशी के सम्बन्ध से प्रारब्धवश नया जन्म काशी में प्राप्त करके तत्त्वज्ञान प्राप्त करके भगवान् शिव की कृपा से तारक मंत्र के उपदेश से इस क्रम से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। तत्त्वज्ञान में किसी जाति विशेष को स्वीकार नहीं किया जाता है। केवल काशी मरण ही हर प्रकार से श्रेष्ठ है।

काशी और गङ्गा का नाम लेने से उस आत्मस्वरूप की प्राप्ति हो जाती है। जैसे मथुरा में मरण से गोविन्द के दर्शन प्राप्त होकर स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है।

'काशी सर्वप्राणिनां वै मोक्षदायि शिवाज्ञया।

तत्र केदारभूः श्रेष्ठा यतो हिंसा न भैरवी ॥'

अर्थात् शिवजी की आज्ञा से काशी सभी प्राणियों को मोक्ष देने वाली है। उसमें केदार खण्ड तो अति श्रेष्ठ है जहाँ पर भैरवी यातना भी नहीं होती है।

काशी में तारकमन्त्र द्वारा मोक्ष

अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे।

अत्र = अविमुक्तेहि = प्रसिद्धौ, जन्तोः = चतुर्विधस्य जीवजातस्य, प्राणेषूत्क्रममाणेषु = प्राणैरुत्क्रान्ति कुर्वतः।

इस अविमुक्त क्षेत्र में शरीर परित्याग कर प्राणों के द्वारा ऊपर की ओर जाते हुए चारों प्रकार के जीवों को भगवान् रुद्र तारक मंत्र का उपदेश देते हैं।

ब्रह्मज्ञानं कुतो देवि कलिनोपहतात्मनाम्।

स्वभावचञ्चलाक्षाणां ब्रह्मेह प्रदिशाम्यहम् ॥

शिवजी कहते हैं– गर्भवास, जन्म, जरा और मृत्युरूपी संसारसागर से मैं भक्तों को तार देता हूँ इसलिए मेरा नाम 'तारक' कहा गया है।

अहं भवन्नामगृणन्कृतार्थो, वसामि काश्यामनिशं भवान्या।

मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं, दिशामि मन्त्रं तव राम नाम ॥६२॥

(अध्यात्मरा. अ. ५)

हे राम! मैं आपके नाम को लेते हुए कृतार्थ होकर भवानी के साथ रात दिन काशी में रहते हुए मरने वालों को आपके राम नाम का मन्त्र मुक्ति के लिए देता हूँ। राम मंत्र सबको देय नहीं ।

न देयं यस्य कस्यापि प्राणाः कण्ठगता यदि ।

देयं सद्भक्तियुक्ताय शान्ताय समचेतसे ॥

गुरुभक्तिरतोनित्यं विरक्तो यः समाहितः ।

भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च हृदि तिष्ठेत्सनातनी ॥

तस्मै देयं च देवेशि अन्यथा न प्रकाशयेत् ।

प्रकाशितं च दुष्टेऽपि निष्फलं जायते ध्रुवम् ॥

(रामतापनी उपनिषद्)

महादेव जी कहते हैं–यह जो राम मंत्र है सो देय नहीं है किसी को कंठगत प्राण होने पर भी सद्भक्तियुक्त शान्त समचित गुरु भक्ति युक्त विरक्त नित्य समाहित चित्त होता है और जिसके हृदय में भक्ति ज्ञान का वैराग्य सदा रहता है उसी को देय है । हे देवेशि! ऐसा जो न हो उसे न दें– दुष्ट के प्रति प्रकाशित भी हो तो वह निष्फल हो जाता है ।

काश्यां तु ब्रह्मनालेऽस्मिन्मृतो मत्तारमाप्नुयात् ।

पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिं प्राप्नोति मानवः ॥२॥

(मुक्तिकोपनिषद्)

काशी में ब्रह्मनाल के बीच में प्राणी शरीर त्याग करता है उसका फिर जन्म नहीं होता, वह मुक्त हो जाता है ।

ब्रह्मज्ञानं तदेवाहं काशी संस्थिभागिनाम् ।

दिशामि तारकं प्रान्ते मुच्यन्ते ते तु तत्क्षणात् ॥

(छान्दोग्योपनिषद्)

काशी वासी अन्त समय में ब्रह्म ज्ञान रूप तारक मंत्र के उपदेश से उसी क्षण मुक्त हो जाते हैं । जिस प्रकार मूँज के फूल की रूई आग के स्पर्श मात्र से भस्म हो जाती है । इसी प्रकार ज्ञानरूपी अग्नि के उत्पन्न होते ही जीव के सभी संचित पापकर्म क्षण भर में जल कर भस्म हो जाते हैं ।

प्राणी के प्राण जाने के समय दु:ख को नाश करने वाले रुद्र तारक मन्त्र का उपदेश देते हैं उस उपदेश से प्राणी मरण सहित मुक्त हो जाता है । इसलिए अविमुक्त काशी का सेवन करना चाहिए ।

कपालमिन्दुः करिचर्म नागाः काशीपुरी कण्ठगतस्य जन्तोः ।

मूर्च्छासु मूर्च्छासु परिस्फुरन्ति संज्ञासु संज्ञासु तिरोभवन्ति ॥

(शैवागम)

काशी पुरी में जब जीव के प्राण गले तक पहुँच जाते हैं और वह मरने लगता है उस समय जब-जब उसे मूर्च्छा आती है तब-तब उसे शिव के हाथ का कपाल उनके ललाट पर का चन्द्रमा, उनके ओढने का करिचर्म और उनके शरीर पर सर्प दिखाई देते हैं और जब-जब मूर्च्छा दूर होती है तब-तब सब आँख से ओझल हो जाते हैं । अतएव जब प्राण जाने के समय बेहोशी होती है उस समय शिवजी तारक मन्त्र सुनाने के लिए आते हैं और उनके कपाल, चन्द्रमा आदि दिखाई देने लगते हैं परन्तु जब फिर होश आता है तो वे सब चीजें फिर लुप्त हो जाती है । तारक मन्त्र कौन है तथा

तारक शब्द का अर्थ क्या है ?

नारद उवाच–

अथ हैनं भगवन्तं परमेष्ठिनं नारदः पप्रच्छ-संसारतारकं प्रसन्नो ब्रूहीति। तथेति परमेष्ठी वक्तुमुपचक्रमे-ओमिति ब्रह्मेतिव्यष्टिसमष्टिप्रकारेण ।।

(नारदोपनिषद्)

नारद जी ने ब्रह्मा से पूछा भगवन् आप प्रसन्न होकर यह बताइये कि संसार समुद्र से तारने वाला कौन है ? ब्रह्माजी ने नारद से कहा–ॐकार ब्रह्म ही तारक मंत्र है। अतः ॐकार ही संसार समुद्र से तारने वाला है।

तारकम् तारकः = प्रणवः । तारयतीतितारः (स्वार्थेकः प्रत्ययः) संसारसागरादुत्तारकं = तारकं च तद्ब्रह्मइति तारकं ब्रह्म उच्यते ।

ॐकार तारक है क्योंकि जो डूबते हुए का उद्धार करके उसे तार दे उसी को तारक कहते हैं। (तारक शब्द में 'तार' शब्द में तार शब्द से स्वार्थ में "क" प्रत्यय हुआ है। अर्थात् जो अर्थ तार शब्द का है वही अर्थ तारक शब्द का है।

'तरस्वी तारको धीमान्' । शिव का एक नाम तारक भी है -

(शिव पु. वि. सं)

तारयति इति तारः तार एव तारकः । अर्थात् जो भक्तों को संसार सागर से तार दे वह हुआ तारः । तारः ही तारक कहलाता है।

तारकं ब्रह्मपरमं शिवइत्यक्षरद्वयम् ।
नैतस्मादपरं किञ्चित् तारकं ब्रह्म सर्वथा ॥

(शिवरहस्य सप्तमंशः अ. २३)

'शिव' यह जो दो अक्षर का नाम है, यही परम तारक ब्रह्म हैं। दूसरा तारक मंत्र नहीं है।

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म इति भगवान् व्याचष्टे' ।

ॐकार एक अद्वितीय अक्षर अविनाशी ब्रह्म है। (गीता ८/१३)

अविमुक्ते मुमुक्षेऽस्तु कर्णमूले महेश्वरः ।

दिशति ब्रह्मसंज्ञानं बोधोपायं कृपानिधिः ।। (स्कन्द पुराण)

अविमुक्त क्षेत्र अर्थात् काशी में मरते समय मुक्ति की अभिलाषा वाले 'प्राणियों के कान में शिवजी कृपा करके बोध उपाय भूत ब्रह्म संज्ञान का अर्थात् ॐकार का उपदेश करते हैं। अपार संसार सागर से तार देने वाले तारक ब्रह्म का उपदेश भगवान् रुद्र करते हैं। प्रणव अर्थात् ओंकार को ही विद्वान लोग तारक ब्रह्म कहते हैं। इसमें अनेक वेद वाक्य प्रमाण है। ''ओमितीदं ब्रह्म' इति श्रुतेः। (तै. उ. ११/८)

ओंकार ही ब्रह्म है। अर्थात् ओंकार और ब्रह्म में कोई भेद नहीं।

''ओमित्येदतक्षरमिदं सर्वम्' इति श्रुतेः । (माण्डूक्योपनिषद् १) **ओमित्येतदक्षर–मिदं सर्वम्** ।

तस्योपव्याख्यानभूतं भवद्भविष्यदितिसर्वमोङ्कार एव ।

यच्चान्यत्त्रिकालातीतंवदष्योङ्कार, एव ।।

(माण्डूक्योप) 'ओम्' यही अक्षर सब कुछ है। यही सर्वव्यापक ब्रह्म है।

ॐकारः प्रथमाक्षरो भवति उकारो द्वितीयाक्षरोभवति मकारस्तृतीया– क्षरो भवति अर्धमात्रश्चतुर्थाक्षरो भवति बिन्दुः ।

पञ्चमाक्षरो भवति नादष्षष्ठाक्षरो भवति तदेव तारकं ब्रह्मत्वं विद्धि ॥

अकार पहला अक्षर है दूसरा उकार अक्षर है तीसरा मकार अक्षर है चौथा अर्धमात्रा अक्षर है बिन्दु पंचम अक्षर है छठवां नाद अक्षर जानना चाहिए। उस ॐकार को तारक मंत्र और तारक ब्रह्म जानना चाहिए। जो संसार समुद्र से तार दे उसको तारक कहते हैं।

प्रणवः सर्ववेदादि प्रणवः शिववाचकः ।

मन्त्राधिराजराजश्च महाबीजं मनुः परः ॥६०॥

शिवो वा प्रणवोह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः।

वाच्य-वाच्कयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः ॥६१॥

एवमेव महामन्त्रं जीवानां च तनुत्यजाम् ।

काश्यां संश्राव्य मरणे दत्ते मुक्ति परां शिवः॥६२॥

(शिवकैलाश संहिता, अ. १३)

कार्तिकेयजी वामदेव ऋषि से कहते हैं कि प्रणव अर्थात् ॐकार सम्पूर्ण वेदों का आदि है, और ॐकार शिव का वाचक है, तथा ॐकार समस्त मन्त्रों का राजा है एवं महाबीज है और श्रेष्ठ है। शिव ॐकार स्वरूप है और ॐकार शिव स्वरूप है। दोनों में कोई भेद नहीं है अतः इसी ॐकार को अथवा ॐकार स्वरूप शिव के 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र को जीवों को देह त्यागते समय सुनाकर शिवजी श्रेष्ठ मुक्ति को देते हैं।

तारकं दण्डकं चैव कुंण्डलं चार्द्धचन्द्रकम् ।

पञ्चमं बिन्दुसंकाशं पञ्चब्रह्मसनातनम् ॥१॥

तीन के अंक के समान जो आकार है वह तारक है और जो दण्डाकार रेखा है वह दण्डक और कुण्डलाकार है वह कुण्डल है और जो अर्धचन्द्राकार है वह

अर्धचन्द्र है और जो अर्धचन्द्र में अनुस्वार है वह बिन्दु अनादि अनन्त पंच-ब्रह्म है ॥१॥

ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।

पञ्चदेवं तु विख्यातं पञ्चब्रह्मस्वरूपवत् ॥२॥

अकारश्च उकारश्च मकारश्च त्रिमात्रिकम् ।

इकारश्चैव एकारः पंचकं मातृसंज्ञिकम् ॥३॥

अकार सूर्य कहाता है उकार चन्द्रमा कहाता है अकार का उकार से मेल सूर्य को चन्द्र में ले जाता है ।

बारह कला सूर्य नाभि स्थान में रहता है । सोलह कला से चन्द्र त्रिकूट में रहता है । उस चन्द्र का मकाराख्य अग्निज्योति से मेल करता है । यह प्रक्रिया-शैवागम स्वच्छन्द के पंचम पटल में प्राःद्ध है ।

अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे ।

येनासावमृती भूत्वा मोक्षीभवति । तस्मादविमुक्तमेवनिषेवेत

अविमुक्तं न विमुञ्चेदेवमेवैतद् याज्ञवल्क्यः ॥ (जावालोपनिषद् १/१)

इस अविमुक्त क्षेत्र (काशी में प्राणियों का देह-त्याग करते समय रुद्र (शिवजी) तारकब्रह्म ॐकार मंत्र का उपदेश करते हैं । जिस मंत्र को सुनने से वह प्राणि (जीव) अमृतत्व को प्राप्त करके मुक्त हो जाता है । अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है । इसलिए अविमुक्त (नगरी) काशी का सेवन करना चाहिए ।

यः ॐकारः सः प्रणवः यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी– सोऽनन्तः योऽनन्तस्तत्तारं । यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तत् शुक्लं, वैद्युतं, यद्वैद्युतं तत् परब्रह्म यत्परं ब्रह्म स एको य एकः स रुद्रः यो रुद्रः स ईशानः स भगवान् महेश्वरः । (अथर्वशीर्ष उपनिषद्, ३)

जो ॐकार है वह प्रणव है, जो प्रणव है वह सर्वव्यापी अनन्त है, जो अनन्त है वह तारक है वह सूक्ष्म शुक्ल वैद्युत, परंब्रह्म है जो परंब्रह्म है वही एक (अद्वितीय रुद्र है, जो रुद्र है वही भगवान् ईशान महेश्वर महादेव (शिव) है।

अतस्तदेव जानीयात् प्रणवं सर्वकारणम् ।

एवमेवहि देवेशि सर्वमंत्रशिरोमणिम् ।।

काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्तिहेतवे।

(शिवपुराण अ. ३/९१/९/१०)

शिवजी कहते हैं–हे पार्वती! ॐकार समस्त मंत्र-तंत्रों का कारण है, अतः समस्त मन्त्रों का शिरोमणि इस ॐकार का ही काशी में देह त्यागने वाले प्राणियों को मैं मुक्ति के लिए उपदेश देता हूँ।

ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।। (गीता ८/१५)

ॐ यह एकाक्षर मन्त्र साक्षात् ब्रह्म है। इस मंत्र को जपता हुआ मेरा ध्यान करता हूआ जो मनुष्य देह का परित्याग करता है वह परमगति को प्राप्त होता है।

क्व च तादृक्तपांसीह क्व तादृग्योग उत्तमः ।

यादृग्भिः प्राप्यते मुक्तिः काश्यां मोक्षोत्तमोत्तमः ।।

कहाँ वैसा तप हो सकता है और कहाँ वैसी उत्तम योग साधना ही की जा सकती है जिससे मुक्ति मिल सके। केवल काशी नगरी का निवास ही एक ऐसा है जो उत्तम मोक्षदायक है।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यपूर्वम्पुनः पुनः ।

न काशी सदृशी मुक्त्यै भूमिरन्या महीतले ॥ (काशी पंचक)

यह अनेक बार सत्य है कि मुक्ति प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण भूतल में काशी जैसी भूमि और कहीं नहीं है ।

दुर्लभं जन्म मानुष्यं दुर्लभा काशिकापुरी ।

उभयोः सङ्गमासाद्य मुक्ता एव न संजयः ॥

मनुष्य जन्म दुर्लभ है और काशी नगरी भी दुर्लभ है और दोनों का साथ हो जाने पर मनुष्य निःसंदेह मुक्त हो जाते हैं ।

मानुष्यम्प्राप्य ये मूढ़ा निमेषमितजीवितम् ।

न सेवन्ते पुरीं काशीं ते मुष्टाः मन्दबुद्धयः ॥

मनुष्य जीवन पाकर जो मन्द बुद्धि निमेष परिमाणमात्र रहने वाले इस जीवन में काशी पुरी का सेवन नहीं करते मानो उन्हें किसी ने ठग लिया है ।

काश्यां चतुर्विधा मुक्तिप्राप्तिः कालभेदात

अन्यच्च मरणानन्तरं सालोक्यादि चतुर्विधमुक्तिरपिक्रमेण,

भवति न पुनर्गर्भवासः

काश्यां मृतस्तु, सालोक्यं साक्षात्प्राप्नोति सत्तमः ।

ततः सरूपतां याति ततः सान्निध्यमश्नुते ॥

(तदुक्तं पद्मपुराणे)

मरने के बाद सालोक्य आदि चार प्रकार की मुक्ति भी क्रम से होती है। इसके बाद गर्भवास नहीं होता है। काशी में मरा हुआ पुरुष सीधे सालोक्य मुक्ति को उसके बाद सारूप्य मुक्ति को फिर सान्निध्य मुक्ति को प्राप्त करता है।

काश्यां मृतस्तु, सालोक्यं **साक्षात्प्राप्नोति सत्तमः।**
वाराणस्यां मृतो जन्तुः साक्षात्सारूप्यमश्नुते ॥
अविमुक्ते विपन्नस्तु साक्षात्सान्निध्यमाप्नुयात् ।
अन्तर्गृहे विपन्नस्तु साक्षात्कैवल्यमाप्नुयात् ॥
केवलस्य भावः कैवल्यं शिवतादात्म्यं,
प्राप्नुयात्साक्षाच्छिवस्वरूपो वा भवतीत्यर्थः।

काशी में मरा हुआ प्राणी साक्षात् सालोक्य मुक्ति को प्राप्त करता है, वाराणसी में सारूप्य मुक्ति मिलती है, अविमुक्त क्षेत्र में मरा हुआ प्राणी सान्निध्य मुक्ति और अन्तगृङ्ही क्षेत्र में मरा हुआ प्राणी कैवल्य मुक्ति को प्राप्त करता है।

केवल का भाव है कैवल्य। अर्थात् - शिवतादात्म्य की प्राप्ति या शिव स्वरूप होना। कैवल्य के विभिन्न अर्थ दर्शाये गये हैं। कैवल्य शब्द का अर्थ यह है कि आत्मा अनात्मा के संसर्ग से मुक्त होकर केवल अपने आप में अवस्थित होना।

सांख्य तथा पातञ्जल योगदर्शन में 'कैवल्य' शब्द का प्रयोग हुआ है।

पाशुपत योगीगण 'महेश्वर' प्रतिद्वन्द्वी के रूप में कैवल्य शब्द की व्याख्या करते हैं। श्री रामानुज आदि भक्ति सम्प्रदाय वाले भगवत्कैङ्कर्य आदि के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में कैवल्य शब्द की व्याख्या करते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य स्थलों में भी समझना चाहिए। सांख्य और पातञ्जल के मत से कैवल्य शब्द का अर्थ यह है कि आत्मा त्रिगुणात्मिका प्रकृति से अपने को पृथक् करके अपने चित् स्वरूप में प्रवेश करता है।

कैवल्य प्राप्तिका उपाय विवेक (ज्ञान) है ।

पातञ्जल सिद्धान्त यह है कि आत्मा एकाग्र भूमि का आश्रय प्रज्ञा लाभ करके, प्रज्ञा की चरम अवस्था अविवेक को दूर करने के लिए अचिदात्मक पुरुष को क्रमशः पृथक् करके अपने स्वरूप में स्थित होता है ।

सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में प्रज्ञा का उदय होता है तथा क्रम विकास होता है । इस क्रम विकास के फल से समाधिका आलम्बन क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म में अवयवी से अवयव में स्थित होता है । पश्चात् ग्राह्य विषय से अतिक्रान्त होने पर वितर्क और विचार भूमि से पार होकर ग्रहणात्मक करण को अवलम्बन करके आनन्द समाधि में स्थित होता है ।

इसके बाद ग्रहण की भूमि से अर्थात् करणभूमि से गृहीत भूमि में प्रवेश होता है । इसका नाम 'अस्मिता-समाधि' है । इस समाधि में ग्राह्य, ग्रहण और ग्रहीता-तीनों ही आयत्त हो जाते हैं, परन्तु उस समय भी विशुद्ध आत्म साक्षात्कार नहीं होता ।

विशुद्ध आत्मा ग्रहीता नहीं है अतएव अस्मिता प्रज्ञाभूमि में उपलब्ध ज्ञान ऐश्वर्यव्यञ्जक होने पर भी विशुद्ध आत्मज्ञान नहीं होता, क्योंकि अनात्म से आत्मभाव को पृथक् किये बिना विशुद्ध शुद्ध आत्मसत्ता का साक्षात्कार नहीं होता । इस कारण आत्मसाक्षात्कार के लिए योग क्रिया आवश्यक है ।

पूर्ण 'विवेकख्याति' हुए बिना यह सम्भव नहीं है । विवेकख्याति फलस्वरूप पुरुष का स्वरूप दर्शन होता है । तब उस चिदालोक में अपरिणामी पुरुष और परिणामी गुण देखने में आते हैं । तभी 'गुणवितृष्णा' रूप 'परवैराग्य' का उदय होता है । उसके बाद विवेक पूर्ण होने पर आत्मा-अनात्मा से पृथक् अपने चित्स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है । वस्तुतः अस्मिता समाधि के बाद एकाग्रभूमि का अतीत निरुद्ध-भाव का आविर्भाव होता है । उसके बाद निरोध भी नहीं रहता ।

एकाग्रता के बाद निरोध ही चित्त का प्रगति रूप है। उसके बाद निरोध का संस्कार मात्र रह जाता है तथा उसके साथ ही चित्त निवृत्त हो जाता है। निरोध के बाद निरोध का भी निरोध हो जाने पर कह सकते हैं कि चित्स्वरूप पुरुष की अपने स्वरूप में स्थिति हो गयी। यही 'कैवल्य' है।

सांख्य के मत से या पातञ्जल के मत से पुरुष त्रिगुणात्मिका प्रकृति से पृथक् होकर अपने स्वरूप में स्थित होता है। पुरुष द्रष्टा और अपरिणामी है, प्रकृति परिणामशीला है। इस कैवल्य के अनेक प्रकार है। तन्त्र में तीन प्रकार के कैवल्य का विवरण मिलता है।

इसका कारण अचित् की तीन अवस्थाएँ हैं। प्रत्येक अवस्था से मुक्त होकर पुरुष को कैवल्य प्राप्त करना पड़ता है। इसी कारण कैवल्य तीन प्रकार का होता है। अचित् की स्थूलतम अवस्था त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। अचित् की मध्यावस्था माया है। वह निर्गुण है।

इस माया से मुक्त होना द्वितीय कैवल्य है। जो लोग प्रकृति और माया को एक मानते है, उनकी बात नहीं कही जाती है।

प्रकृति से परे माया का स्थान है। इसी कारण चिदात्मा पुरुष प्रकृति से मुक्त होकर भी माया से निबद्ध रह सकता है। परन्तु अन्त में माया से मुक्त होना पड़ता है।

यही द्वितीय कैवल्य है परन्तु माया से कैवल्य हो जाने पर ही कैवल्य का उत्कर्ष नहीं हो जाता; क्योंकि माया के परे शुद्ध माया महामाया विद्यमान है।

सिद्धान्तशैव के मत से यह महामाया ही बिन्दु या कुण्डलिनी के नाम से परिचित तथा परिणामशील है। सारा जगत् महामाया के इस बिन्दु से ही रचित है।

आत्मा जब महामाया से मुक्त होती है तब वह श्रेष्ठ कैवल्य प्राप्त करती है। यही विशुद्ध कैवल्य है।

इसी की विशिष्टतम अवस्था को 'निर्वाण' 'परिनिवार्ण' या 'महानिर्वाण' कहते हैं। किं बहुना इसकी भी परावस्था है । वही आत्मा की शिवावस्था है । अचित् सत्ता से पृथक् होने पर भी आत्मा को पूर्णत्व प्राप्त नहीं होता। आत्मा में जब तक शिवत्व का विकास नहीं हो जाता, तब तक पूर्णत्व सम्भव नहीं है । उन्मनी शक्ति का विकाश हुए बिना आत्मा को शिवरूप में पहुँचाया नहीं जा सकता ।

वस्तुतः उन्मनी शक्ति ही चित् - शक्ति है । वह चित् स्वरूप शिवभाव के साथ नित्य संशिलष्ट है । चित् -शक्ति का पूर्ण विकास होने पर त्रिविध कैवल्य भेद पूर्ण हो जाता है । तब आत्मा ही शिवरूप में आत्म प्रकाश करती है ।

जब आत्मा शिवरूप में प्रकाशमान होती है तो उन्मनी शक्ति निवृत्त हो जाती है । तब शिव-शक्ति अभिन्न होकर प्रकाशित होती है । यही परशिव और परासंविद् की स्वरूप स्थिति हैं । यह अवस्था 'समना' और 'उन्मना' शक्ति के परे हैं तथा शिव और शक्ति के सामंजस्य की स्थिति है । यह आत्मा की निष्कल स्थिति है । कोई कोई आचार्य इस स्थिति को ही कैवल्य कहते हैं इसमें कोई आपत्ति नहीं है; क्योंकि यही पुर्ण स्वरूप है ।

सालोक्यं शिवलोकवासित्वम् सरूपतां शिवतुल्यरूपताम् ।
सान्निध्यं शिवसामीप्यम् ब्रह्मैकतां शिवभेदताम् ॥
सलोकतां च सारूप्यं सान्निध्यं वापि सत्तमाः ।
कल्पं कल्पमवाप्नोति तत्ते ब्रह्मात्मको भवेत्''॥ इति

सालोक्य का अर्थ है-शिवलोक में निवास पाना । सरुपता का अर्थ है- शिव जी के तुल्य रुप को प्राप्त करना, सान्निध्य का अर्थ है-शिवजी के समीप रहना ।

ब्रह्मैकता का अर्थ है शिव से सदा अभेद बना रहना । सलोकता, सरुपता तथा सान्निध्य से मुक्तियाँ एक-एक कल्प बीतने पर मिलती हैं, तब यह ब्रह्ममय होता है ।

सायुज्यमुक्तिरत्रैव सान्निध्यादिरथान्यतः ।

सुलभा साऽपि नो नूनं काश्यां मोक्षोऽस्ति हेलया।।

सायुज्य तथा सान्निध्य मुक्ति यहीं मिलती हैं अन्यत्र नहीं । वह भी मोक्ष क्षेत्र काशी में हँसी-खेल में मिल जाती है ।

जले स्थलेऽन्तरिक्षे वा यत्र कुत्रापि वा मृताः।

तारकं ज्ञानमासाद्य कैवल्यपदभागिनः ।।

(शिवरहस्य)

काशी में प्राणी की मृत्यु जल में हो अथवा पृथ्वी के मध्य आकाश के नीचे किसी जगह प्राण त्यागने पर वह प्राणी तारक मंत्र के उपदेशजन्य ज्ञान को पाकर कैवल्य मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ।

काशी तु सर्वथा ज्ञानादज्ञानाद्वा येन केनाप्युपायेन वा ।

मरणाऽनन्तरं मुक्तिमेव प्रयच्छति न पुनर्गर्भावासम् ।।

तथान्तराणि क्षेत्राणि विष्णुभक्तिश्च नारद ।

अन्तःकरणसंशुद्धिं जनयन्ति न संशयः ।।

वाराणस्यपि देवर्षे तादृश्येव परं च सा ।

प्रकाशयति ब्रह्मैक्यं तारकस्योपदेशतः ।। (तदुक्तं पद्मपुराणे)

यह काशी ज्ञानी अथवा अज्ञानी दोनों प्रकार के पुरुषों को किसी प्रकार से मरने के बाद मुक्ति ही देती है न कि फिर गर्भवास होने देती है। जैसा की पद्मपुराण में कहा है- हे नारद ! अन्य तीर्थ, अन्य क्षेत्र तथा विष्णु भक्ति केवल लोगों के अंतःकरण को शुद्ध कर देते हैं । इसमें संशय नहीं है।

हे देवर्षि! वाराणसी भी वैसी ही है, किन्तु यह तारकमन्त्र का उपदेश पाकर जीव तथा ब्रह्म में एकता स्थापित कर देती है ।

इति वाक्यान्मोक्षरूपफलप्रदत्वेनायोध्यादीनां नगरीणां साम्यमेव प्रतीयते।

तथापि–अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि च,

काशीं प्राप्य विमुच्यन्ते नान्यथा तीर्थकोटिभिः।। (काशी खण्ड)

मुक्तिपदत्वेनामिधानाच्छ्रैष्ठ्यं वाराणस्याः । -इतिविशिष्य-

मानव को मुक्ति केवल काशी में ही मिलती है और करोड़ों तीर्थों का दर्शन आदि करने पर भी नहीं मिलती। इसलिए वाराणसी की विशेषता प्राणि मात्र को मुक्ति देने से है।

तीर्थानि सर्वाण्यपि मोक्षदानि श्रुतानि सर्वेष्वखिलेषु राजन् ।

वाराणसी प्राप्तिफलानि शीघ्रं कालेन चातोव्यवधानवन्ति ।।

(काशी रहस्य)

हे राजन् सब शास्त्रों में जितने मोक्ष देने वाले तीर्थ कहे गए है वे सब साक्षात् मोक्ष नहीं देते किन्तु उसे दूसरे जन्म में काशी प्राप्त करा देते है और वहाँ जीव शरीर का परित्याग करता है और मुक्त हो जाता है।

अयोध्या, मथुरा आदि तीर्थों में मरने से मोक्ष मिलने में एक जन्म का व्यवधान पड़ता है परन्तु काशी में मरते ही मुक्ति मिल जाती है।

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ।

पुरी द्वारावती चैवसप्तैता मोक्षदायिकाः ।। (काशी खण्ड)

यद्यपि आयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जयिनी), पुरी तथा द्वारिका २न तीर्थनगरों के साथ काशी की भी गणना होने के कारण इसे भी उनके बराबर माना जा सकता है। फिर भी और जो मुक्तिकारक क्षेत्र कहे गये हैं वे काशी को प्राप्त कराने वाले हैं।

साक्षात् मोक्षो न चैतासु पुरीषु प्रियभाषिणि ।

अगस्त्य जी कहते हैं कि हे लोपामुद्रे अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, आदि सात मुक्तिदायक पुरियाँ है पर वहाँ भी मरने पर मोक्ष नहीं होता। दूसरा जन्म लेकर काशी में मृत्यु होने पर ही तब मोक्ष होता है ।

नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गंगाद्वारे च पुष्करे ।
स्नानात्संसेवनाद्वापि न मोक्षः प्राप्यते नरैः ॥
इह संप्राप्यते येन तत एवं विशिष्यते ।
किंच काश्यां मरणकाले कृतोऽपि विशेषो नास्ति ॥

नैमिषारण्य कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार (हरिद्वार) तथा पुष्कर क्षेत्र में स्नान करने से अथवा उन तीर्थों का सेवन करने से भी मोक्ष प्राप्ति नहीं होती है । इस काशी में उस मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, इसलिए यह उन सब में श्रेष्ठ है । काशी में किसी समय और कभी भी मरने पर दोष नहीं है ।

एक एव प्रभावोऽस्ति क्षेत्रस्य परमेश्वरि ।
एकेन जन्मना देवि मोक्षं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ (मत्स्य पुराण)

इस काशी जी की सबसे बड़ी महिमा यह है कि यहाँ एक ही जन्म में जीव उत्तम मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है ।

सर्वे वर्णा आश्रमाश्च बालयौवनबार्द्धकाः ।
अस्यां पुर्यां मृताश्चेत्स्युर्मुक्ता एव न संशयः ॥ (शिव पुराण)

सब वर्ण और आश्रम वाले बालक, वृद्ध तथा युवावस्था वाले प्राणी काशी में शरीर त्याग करने से मुक्त हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः ।
स्त्रीम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णा पापयोनयः ॥१९॥

कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः ।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये ॥२०॥
चंद्रार्द्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वाजाः ।
शिवे मम पुरे देवी जायन्ते नात्र संशय ॥२१॥ (काशीखंड)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर स्त्री, म्लेच्छ संकीर्ण (हिन्दू और म्लेच्छ से उत्पन्न) पापयोनि में पैदा हुए हैं । (चाण्डालादि) और कीट, चींटी, पक्षी, मृग अर्थात् जीवमात्र जो इस अविमुक्तक्षेत्र में काल के बस होकर देह त्याग करते हैं, वे सब मस्तक में अर्ध चन्द्रधारी, ललाट में त्रिनेत्र और वृष वाहनारुढ़ होकर शिवरुप हो जाते हैं ।

अर्थवादत्वमस्येति वादिपाषण्डनिन्दा अत्राऽर्थे ।
येऽर्थवादमाहुस्ते नास्तिका मन्तव्याः ।
''यत्र विश्वेश्वरोदेवः साक्षात्स्वर्गतंरगिणी ।
मिथ्या तत्रानुसूयन्ते तार्किकाश्चानुसूयकाः ।
उदाहरंतिये मूढ़ा कुतर्कबलदर्पिताः ॥
काश्यांसर्वार्थवादोयं ते विट्कीटा युगे युगे॥" (काशीखंड)
अतएव ब्रह्मवैवर्ते ''जानीह्यर्थेवादत्त्वं काश्यां मुत्तिनिनिर्णये'' इति

इस अर्थ में जो अर्थवाद करते हैं उन्हें नास्तिक समझना चाहिये। जैसा कि काशी खण्ड में कहा है- जहाँ विश्वेश्वर निवास करते हैं और जहाँ साक्षात् देवी गंगा प्रवाहित होती रहती है, वहाँ के सम्बन्ध में तार्किक और अनुसूयक झूठ-मूठ की असूया करते हैं । उदाहरण देते हैं जो मूर्ख कुतर्क रुपीबलका घमंड करते हैं । वे प्रत्येक युग में विष्ठा के कीड़ों के रुप में जन्म लेते हैं । इसलिए ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा है –काशी में मुक्ति निर्णय के सम्बन्ध में कभी अर्थवाद नहीं समझना चाहिये ।

कर्मानुसार देह प्राप्ति

काश्यां विदेह कैवल्यं भवतीति सुनिश्चितम् ।
काश्यां विदेह कैवल्यं प्राप्तेरुत्तरकर्मणाम् ।।"

काशीपुरी में शरीर का परित्याग करने से विदेह कैवल्य अवश्य हो जता है इसमें कोई संदेह नहीं। काशी में मरने पर जब विदेह कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है तब क्रियमाण और करिष्यमाण कर्मों का असर ब्राह्मीभूत जीव के ऊपर नहीं पड़ता।

अब यह प्रश्न उठता है कि संचित कर्म और प्रारब्ध कर्म ये दोनों प्रकार के कर्म, कर्म ही के नाम से प्रसिद्ध हैं, अर्थात् कर्म कहने से प्रारब्ध एवं संचित इन दोनों प्रकार के कर्मों का ज्ञान होता है तो ज्ञान रुपी अग्नि से जिस प्रकार संचित कर्म क्षीण हो जाते हैं उसी प्रकार प्रारब्ध कर्मो का नाश भी क्यों नहीं हो जाता श्रुति में तो केवल कर्म शब्द कहा गया है।

उत्तर-

प्रारब्धस्योपजीव्यत्वात् तत्वज्ञानेन कर्मणः ।
अशक्यत्वाच्च मुक्तेषोरिवबाधो न विद्यते ।।"

जीव को मोक्ष तभी मिलता है जबकि उसके प्रारब्ध कर्म उसमें सहयक होते है अर्थात् प्रारब्ध कर्मों के ही अनुसार जीव का आवागमन संसार में होता है ।

जब प्रारब्ध कर्म अपना फल देना प्रारम्भ कर देते हैं तो जब तक वे समाप्त नहीं हो जाते अपना फल देते रहतें हैं। जिस प्रकार तीर जब धनुष से छूट जाता है तब वह अपना काम करके ही रुकता है बीच में नहीं, इसी प्रकार प्रारब्ध कर्म भी अपना काम करके ही समाप्त होते हैं, बीच में उनको कोई नहीं रोक सकता ।

अवश्यं जन्मिनो मृत्युर्यत्र कुत्र भविष्यति ।
कर्मानुसारिणी लभ्या गतिः पश्चाच्छुभाशुभा ।।

किसी जीव की जहाँ कहीं भी मृत्यु होगी वह अपने कर्मों के अनुसार शुभ अथवा अशुभ गति को प्राप्त करता है। जब से यह त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ तभी से कर्म का सम्बन्ध है। सबकी उत्पत्ति में कर्म ही कारण है। यद्यपिजीव स्वरुपतःजन्म और मरण से रहित हैं, फिर भी कर्म रुपी बीज के प्रभाव से अनेक योनियों में बार-बार जनमते और मरते रहते हैं। कर्म समाप्त हो जाने पर जीव का देह से सम्बन्ध कभी नहीं हो सकता।

उत्तम, निन्द्य और उत्तम अनिन्द्य-मिश्रित इन तीनों गुणों से यह जगत् व्याप्त है। जो तत्व के रहस्य को जानने वाले विद्वान् हैं उनके द्वारा भी कर्मों का भेद तीन प्रकार से ही बताया गया है। वे तीन प्रकार के कर्म संचित, प्रारब्ध और वर्तमान हैं इस देह में कर्मों की तीन गतियों का सम्मिश्रण रहता है।

ब्रह्मा आदि सभी उस कर्म के अधीन हैं। महाराज ! सुख, दुःख, जरा मृत्यु, हर्ष, शोक, काम, क्रोध तथा लोभ ये सभी देह से सम्बन्ध रखने वाले गुण है।

देवताओं, मनुष्यों और पशुओं सबसे ये सम्बन्ध रखते हैं। इन सभी विकारो का देह से सम्बन्ध रहता है।

पूर्व जन्म के किये हुए वैर और स्नेह के अनुसार वे शरीर में आश्रय पाते हैं। कर्म शेष न रहने पर प्राणियों की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि सृष्टि में निरंतर विकास होता रहता है। उनके अनुसार जल में रहने वाला 'अमीवा' कीटाणु सर्वप्रथम प्राणी है। धीरे-धीरे उसके रुप बदलते गये।

विकासवाद का दूसरा सिद्धान्त है कि 'योग्यतम प्राणी ही अंत में बच सकेगा।' इसके विपरीत अपने यहाँ का सिद्धान्त है कि मनुष्य अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। मोटे रुप से योनियो की संख्या ८४ लाख मानी गयी है। वे इससे भी अधिक हो सकती हैं। इसमें मनुष्ययोनि सर्वोत्कृष्ट है। कर्मानुसार मनुष्य दूसरे जन्म में पशु या अन्य किसी योनि में जन्म ले सकता है। कोई अमीर के घर में जन्म लेता है तो कोई गरीब के घर इसी तरह जन्म से ही कोई रोगी है तो कोई हृष्ट-पुष्ट। प्रायः

लोग यह शङ्का करते हैं कि यदि कर्म फल के अनुसार ही जन्म की व्यवस्था है तो यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो बार-बार जन्म लेता रहता है।

परन्तु यहाँ यह बात-भुला दी जाती है कि योनियाँ स्वतन्त्र और असंख्य है जिनमें ३० लाख पेड़ पौधे – २७ लाख कीड़े मकोड़े और १४ लाख पक्षी, ९ लाख पानी के जीव जन्तु तथा शेष चार लाख तरह-तरह के पशु, इसी में मनुष्यों की भी योनि मानी गयी है। मनुष्य अपने कर्मानुसार ही विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। भगवान् ने उसे विवेक दिया है, इसलिए उसे अपने कर्मों का फल भी भुगतना पड़ता है। किन्तु कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि विवेकहीन हैं, इसलिए उन्हें निर्धारित क्रम से चलना पड़ता है। अपने यहाँ के सिद्धान्तानुसार जब कोई मनुष्य अपने कर्मों के फलस्वरूप किसी पशु-पक्षी की योनियों में जन्म लेता है, तब प्रायः उसमें कुछ पिछले संस्कार बने रहते हैं।

अपने यहाँ पक्षियों में भी जटायु जैसे पक्षी हो गये हैं। मनुष्य योनि को फारसी में 'अंशलफुत मखलूकात' अर्थात् प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। किन्तु अपने यहाँ विकास का अर्थ निरन्तर विकास नहीं लिया गया है, जैसा कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों का मत है। अपने यहाँ के शास्त्रानुसार विकास और संकोच का क्रम कर्मानुसार चलता रहता है, मनुष्य एक दिन में करीब २१६०० बार सांस लेता है। अपने कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य दूसरे जन्म में पशु या अन्य किसी योनि में जन्म ले सकता है।

यदि कर्मविपाक सिद्धान्त न माना जाय तो सृष्टि वैषम्य का कोई न्यायोचित आधार नहीं मिलता है।

यदि ईश्वर में विश्वास है तो क्या वह मनमाने ढंग से प्राणियों की स्थिति निर्धारित करता है यदि ईश्वर न मानकर प्रकृति में ही विश्वास है तो इस वैषम्य का उसमें कोई आधार होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं तो प्रकृति का कोई नियम ही नहीं रह जाता, जबकि वैज्ञानिक सदा प्रकृति के नियमों की दुहाई देते रहते हैं।

विकासवाद के जन्मदाता डार्विन साहब स्वयम् प्रकृति-वैचित्र्य देखकर चकित रह गये थे।

ध्रुवतारा पच्चीस हजार वर्ष तक एक ही स्थान पर ही अचल रहता है, पच्चीस हजार वर्ष बाद ही अपना स्थान परिवर्तन करता देख अचम्भित हुए थे।

उसकी गुत्थी सुलझाने के लिए उन्होंने विकासवाद का सिद्धान्त अपनाया और जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि वह गुत्थी सुलझती नहीं। उसका एकमात्र समाधान 'कर्मविपाक का सिद्धान्त' नहीं है।

वेदों में चार युगों का उल्लेख मिलता है। उसके आधार पर–

१– सत्ययुग की अवधि – १७,२८,००० (सत्रह लाख अठाईस हजरा वर्ष।

२– त्रेता की अवधि- १२,९६,००० (बारह लाख छियानबे हजार) वर्ष।

३– द्वापर की अवधि-८,६४,००० (आठ लाख चौसठ हजार) वर्ष।

४– कलयुग की अवधि - ४,३२,००० (चार लाख बत्तीस हजार) वर्ष।

कर्ममोक्षकथनम्

ऋषयः ऊचु–

कर्मिणा प्राप्यते मोक्ष उताहो ज्ञानिन मुने।
एतं न संशयं छिन्धि सूत पौराणिकोत्तम ॥१॥

ऋषियों ने पौराणिकों में उत्तम मुनि सूतजी से पूछा मोक्ष की प्राप्ति कर्म से या ज्ञान से होती है। इस विषय में हमारे संदेह को आप दूर करें ॥१॥

सूत उवाच –

मुक्तिर्नानाविधा प्रोक्तासायुज्यादिप्रभेदतः ।
तत्र सायुज्यरूपाया मुक्तः साक्षात्तु कारणम् ।।२।।

सूतजी ने कहा मुक्ति सायुज्य आदि भेद से कई प्रकार की बताई गयी है। सारी मुक्ति के स्वरूप में सायुज्य मुक्ति ही प्रत्यक्ष कारण है ।।२।।

सम्यग्यानं न कर्मोक्तं नानयोश्च समुच्चयः।
कर्मणेव हि सिध्यन्ति पुंसामन्याश्च मुक्तयः।।३।।

सब प्रकार के ज्ञान न होने पर कर्मों के समूह से भी कर्मों से मुक्ति सिद्ध हो जाती है ।।३।।

कर्तारं कर्मबन्धाति खलु वेदविदांवर ।
यत्किञ्चित्कर्मजं कर्म कुरुते साध्वसाधु वा ।।४।।

वेद जानने वाले लोग यह बताते हैं कि वासना से मुक्त होकर जो कुछ अच्छा या बुरा कर्म किया जाता है तो वह कर्म ही जीव को बाँधता है ।।४।।

सर्व नारायणे न्यस्य कुर्वन् मुक्तो भविष्यति ।
अस्मिन्नर्थे पुरावृत्तमितिहासं वदामि वः ।।५।।

किये हुए सारे कर्मों को यदि भगवान् को अर्पण कर दिये जाँय तो अवश्य मुक्ति प्राप्ति हो जाती है, इस विषय में प्राचीन इतिहास बताता हूँ ।।५।।

वसुरासीन्नृपश्रेष्ठो विद्वान् दानपतिः पुरा ।
चाक्षुषस्य मनोः काले ब्राह्मणान्वयवर्धनः ।।६।।

पहले चाक्षुषमेनु के काल में ब्राह्मणों के रक्षक विद्वान् एवं दाता, राजाओं में श्रेष्ठ एक वसु नामक राजा थे ।।६।।

एकदा ब्रह्मणः सद्म गतवांस्तद्दिदृक्षया ।
पथि चैत्ररथं दृष्ट्वा विद्याधरपतिंद्विजाः ।।७।।

एक बार उस वसु राजा ने ब्राह्मण के साथ जल्दी-जल्दी जाते हुए रास्ते में चैत्ररथ नाम के एक विद्याधर को देखा ॥७॥

अपृच्छत्तं वसुः प्रीत्या ब्रह्मणोऽवसरं द्विजा ।
सोऽब्रवीद्देवसमितिर्वर्तते ब्रह्मणो गृहे ॥८॥

ब्राह्मण ने पूछा ब्रह्मा से मिलने का कौन सा समय है । उसने उत्तर दिया इस समय ब्रह्मा के घर देवताओं की सभा का आयोजन है ॥८॥

एवं श्रुत्वा वसुस्तस्थौ द्वारि ब्रह्मौकसस्तदा ।
तावत्तत्रैव रैभ्यस्तु आजगाम महातपाः ॥९॥

यह सुनकर वे सब ब्रह्मा के द्वार पर रुक गये । वहीं पर उसी समय रैभ्य नाम के महामुनि भी आ गये ॥९॥

राजासम्पूज्य पप्रच्छ क्व प्रयासीति वै मुनिः ।
रैभ्यः अहं वृहस्पते पार्श्वमागतोऽस्मि महानृप ॥१०॥

राजा ने यह जानकर उनकी अच्छी तरह से पूजा करके पूछा हे मुनि आप कहाँ से कैसे आये । रैभ्य ने कहा हे राजन् इस समय मैं बृहस्पति के पास से आ रहा हूँ ॥१०॥

किञ्चित्कार्यान्तरं प्रष्टुमहं देवपुरोहितम् ।
एवं वदति रैभ्ये तु ब्रह्मणस्तन्महत्पदम् ॥११॥

कुछ कार्य के बाद मैं वृहस्पति से पूछूँगा यह कहकर रैभ्य ब्रह्मा की सभा में चले गये ॥११॥

उत्तस्थुः स्वानिधिष्ण्यानि गता देवगणास्तदा ।
तावद् वृहस्पतिस्तत्र रैभ्येण सहसविदम् ॥१२॥

इसके बाद सभा विसर्जित हो गयी और सारे देवता लोग जब चले गये तब वृहस्पति रैभ्य के साथ वहाँ आये ॥१२॥

कृत्वा स्वधिष्ण्यमगमद्वसुनापि सुपूजितः।
अथ देवगुरुः प्राह रैभ्यमेतद्वचस्तदा ॥१३॥

उठकर सत्कार करके पूजित हो जाने पर देवगुरु रैभ्य से बोले हे ब्राह्मण यह राजा क्या करना चाहते हैं ॥१३।

किं ते करोमि विप्रेन्द्र कथ्यतां राजसत्तम ॥१४॥

वसु ने कहा हे वृहस्पति कर्म या ज्ञान इन दोनों में से कौन से मोक्ष देने वाले हैं, यह पूछने और शङ्का का समाधान करने आया हूँ ॥१४॥

वसुरुवाच–

वृहस्पते कर्मिणा किं प्राप्यते ज्ञानिनाथवा।
मोक्ष एतन्ममाचक्ष्म पृच्छतः संशयं प्रभो ॥१५॥

वसु ने कहा–हे वृहस्पति जी! सत्कर्म करने वाला अथवा ज्ञानी पुरुष किसको मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसका उत्तर आप मुझे दें ॥१५॥

वृहस्पतिरुवाच–

यत्किञ्चित्पुरुषः कर्म कुरुते साध्वसाधु वा।
सर्व नारायणेन्यस्य कुर्वन् मुक्तिं प्रयास्यति ॥१६॥

वृहस्पति ने कहा– जो कुछ अच्छा या बुरा किया हुआ कर्म नारायण को अर्पित कर दिया जाय तो वह मोक्ष को देता है ॥१६॥

श्रूयते (क.ख.हि.) च महाराज संवादो विप्रलुब्धयोः।
आत्रेयो ब्राह्मणः कश्चिद्वेदाभ्यासरतो मुने ॥
वसन्त्यविरतं विप्राः सावित्रीव्रततत्पराः।
नाम्ना संयमनः पूर्वमेकस्मिन् दिवसे नदीम् ॥

धर्मारण्यं गतस्तत्र स्नातुं भागीरथीं नदीम् ।

ततः सन्नं महायूथं हरिणानां ददर्श सः ॥

लुब्धो विष्टरको नाम धनुष्पाणिः कृतान्तवत् ।

आस्थितो मृगयां कर्तुं चापे संयोज्य सायकम् ॥

एक ब्राह्मण और बहेलिये का संवाद सुनिये । वेदाभ्यास में रत कोई आत्रेय ब्राह्म मुनि था । वह सब कुछ छोड़कर सावित्री व्रत में लगा हुआ था उसका नाम संयमन था । पूर्व में एक दिन नदी के किनारे एक धर्मारण्य में जाकर वहाँ भागीरथी में स्नान कर रहा था । उसी समय वहाँ पर हरिणों के महान समूह को देखा ।

विष्टरक नाम का एक बहेलिया हाथ में धनुष धारण किये यमराज की भाँति आया और शिकार के लिए बाण को हाथ में लेकर धनुष पर चढ़ाया ।

ततः संयमनो विप्रो दृष्ट्वा तं मृगायारतम् ।

वारयामास मा भद्र जीवधातमिमं कुरु ॥

तब संयमन नाम के ब्राह्मण ने शिकार में लगे उसको देखकर उसे रोकते हुए कहा, यह जीव हत्या करने से कल्याण नहीं होगा ।

एतच्छ्रुत्वा वचो व्याधः स्मितपूर्वमिदं वचः ।

यह सुनकर आश्चर्यपूर्वक व्याध बोला–

उवाच नाहं हिस्यामि वृथा जीवान् द्विजोत्तम ।

कः केन हन्यतेर्जन्तुः कः केन रक्ष्यतेऽधुना ॥

बताओ हिंसा से जीवन कैसे कैसे वृथा है हे ब्राह्मण जीवों की रक्षा कौन करता है और कौन किसको मारता है ।

हन्ति रक्षति चैवात्मा असत् साधु समाचरन् ।

परमात्मा स्वयं भूतैः क्रीडत्यव्याहतः स्वयम् ॥

मारना और रक्षा करना यह आत्मा का धर्म नहीं साधुलोग ऐसे असत्य आचरण को नहीं मानते। परमात्मा स्वयं सारे भूतों के साथ खेलता और व्यवहार करता है।

कृत्वा मृदवलीवर्दास्तद्वदेतन्न संशयः ।

अहंभावः सदा ब्रह्मन्नविद्येयं मुमुक्षुणाम् ॥

जैसे मिट्टी से बनाया बैल का वध हिंसा नहीं होती। (अर्थात् मैं मारने वाला हूँ या रक्षा करने वाला) मोक्ष चाहने वाले को अहं भाव का त्याग कर देना चाहिए।

अत्रात्मना प्रणीतञ्च जगदेतद्विचेष्टते ।

तत्राहमिति यः शब्दः साधुत्वं न च गच्छति ॥

यहाँ आत्मा ही सारे प्राणियों में चेष्टा कर रही है, वहाँ यह अंहकार का शब्द अच्छे लोगों को प्रयोग नहीं करना चाहिए।

इत्याकर्ण्य स विप्रेन्द्रो द्विजः संयमनस्तदा ।

विस्मयेनाब्रवीद्वाक्यं लुब्धं विष्टरकं द्विजाः ॥

यह सुनकर वह ब्राह्मण आश्चर्य में पड़ गया और आश्चर्य पूर्ण यह वाक्य बहेलिये विष्टरक ने ब्राह्मण से कहा।

किमेतदुच्यते भद्र प्रत्यक्ष हेतुमद्वचः ।

एतच्छ्रुत्वा पुनर्विप्रं लुब्धकः प्राह धर्मवित् ॥

हे भद्र तुमने मेरे लिए वाक्य के सम्बन्ध में यह क्या कहा यह सुनकर फिर से ब्राह्मण ने व्याध से धर्म के विस्तार को पूछा।

कृत्वा लोहमयं जालं तस्याधो ज्वलनं कुरु ।

ततो विप्रोऽपि तत्सर्वं कृत्वा तु विरराम ह ॥

जलती हुई अग्नि में जाली (छिद्र) से युक्त लोहा जब डाला जाता है तो उस

छिद्रों के बीच से जब अग्नि की ज्वाला उसके सहारे निकलती है तो अलग स्वरूपों में सहस्रों ज्वालाएँ निकलती है ।

ज्वलिते तु तदा वह्नौ तज्जालं लोहसम्भवम् ।

गवाक्षनिर्गतं जालं बभौ कादम्बमालवत् ।।

इस तरह एक स्थान से निकली एक ज्वाला छिद्रों के कारण अग्नि जाल जैसी दिखाई पड़ती है । तब बहेलिया बोला एक ज्वाला महान रूप में होती है । तो एक को छोड़कर शेष ज्वालाओं को क्यों ग्रहण करें ।

तदालुब्धोऽबवीद्वाक्यमेकांज्वालां महामते ।

गृहाण येन शेषाणां करिष्याम्यपकारिणाम् ।।

यह कहकर बोला अग्नि में पानी का भरा घड़ा छोड़ देने से अग्नि अपने पूर्ववत् स्वरूप में आ जाती है ।

एवमुक्तः श्रुतांश तु तोयपूर्णे घटे द्रुतम् ।

चिक्षप सहसा वह्निं प्रशशामाशुपूर्ववत् ।।

यह बहेलिया का सुनकर वह तपोनिधि ब्राह्मण बोला भगवान् आपकी इसी अग्नि की शिखा की तरह है ।

ततोऽब्रवील्लुब्धवरो ब्राह्मणं तं तपोनिधिम् ।

भगवन् या त्वया ज्वाला गृहीता सीद्धुताशने ।।

प्रयच्छ येन मार्गेण मांसान्या तस्य (धत्स्व) भक्षय ।

एवमुक्ते तदा विप्रो यावदायसजालकम् ।।

इसी मार्ग से उसका मांस खाओ । यह कहकर तब वह ब्राह्मण उस जालों का आशय समझा ।

पश्येत्तावन्न तत्राग्निर्मूलनाशे गतेऽक्षमः ।

ततो विलक्षभावेन ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥

बहेलिया बोला देखो अग्नि का मूल नाश हो जाने से उसकी क्षमता नष्ट हो जाती है । इसी लक्ष को ध्यान में रखकर हे ब्राह्मण शङ्का समाप्त करो ।

तूष्णीमेव स्थितस्तावल्लुब्धको वाक्यमब्रवीत् ।

एकस्य ज्वलतो वह्नेर्बहुशाखस्य सत्तम ॥

यह कह कर बहेलिया शान्त हो गया कि एक जलती हुई अग्नि से बहुत शाखा हो जाती है अर्थात् एक परमात्मा से अनेक जीव उत्पन्न होकर अनेक रूपों में दिखाई देता है ।

मूलनाशे भवेन्नाशस्तद्वदेतदपि द्विज ।

आत्मनः प्रकृतिस्थस्य भूतानां संशयो भवेत् ॥

मूल वासना अर्थात् जैसे किसी वृक्ष का जड़ नाश हो जाने से वृक्ष की समाप्ति हो जाती है । उसी प्रकार हे ब्राह्मण आत्मा भी प्रकृति के संयोग से सारे भूतप्राणियों में भिन्न-भिंन्न स्वरूपों में दिखाई देता है ।

विकृता वृत्तयो भूय एवैव हि जगत्स्थितिः ।

पिण्डग्रहणधर्मेण यद्यस्य विहितं व्रतम् ॥

विकृत स्वभाव के व्यवहार से अर्थात् भेदपूर्ण व्यवहार ही जगत की स्थिति है। पिण्ड अर्थात् इस शरीर को धारण करके जीव कर्मों का भोग करता है ।

तत्तदात्मनि संयोज्य कुर्वाणो नावसीदति ।

एवमुक्तेन व्याधेन ब्राह्मणय निवेदितम् ॥

उसी जीव आत्मा को परमात्मा के साथ मिला देने से फिर संसार में नहीं आता है । इस प्रकार व्याध ने ब्राह्मण से कहा ।

पुष्पवृष्टिरथाकाशात् पपातोरसि तस्य वै ।
विमानानि च दिव्यानि कामगानि महान्ति च ॥

उसी समय आकाश से पुष्प वृष्टि हुई इच्छानुसार चलने वाले अनेक दिव्य विमान आये । उन विमानों पर वह व्याध दिखाई देने लगा क्योंकि उसकी अद्वैत निष्ठा प्रतिष्ठित हो गयी थी, योग से व्याध ने अनेक शरीर धारण कर रक्खा था ।

बहूनि रत्नमुख्यानि ददृशे ब्राह्मणोत्तमः ।
तेषां विष्टरकं लुब्धं सुषुवेच च मुदास्थितम् ॥

बहुत से रत्नों में मुख्य विष्टर नाम के व्याध को उन सबों में अधिक प्रसन्न उस ब्राह्मण ने देखा ।

ददृशे ब्राह्मणस्तत्र कामरूपिणमुत्तमम् ।
अद्वैतवासनासिद्धं योगाद्बहुशरीररकम् ॥

ब्राह्मण ने यह भी देखा कि इच्छानुसार स्वरुप धारण करने वाला वह बहेलिया अद्वैत वासना की सिद्धि से उसने बहुत शरीर धारण कर लिया है ।

दृष्ट्वा विप्रो मुदा युक्तः प्रययौ निजमाश्रमम् ।
एवं ज्ञानवतः कर्म कुर्वतोऽपि स्वजातिजम् ॥

यह देखकर ब्राह्मण प्रसन्न होकर अपने आश्रम वापस चले आये। इस प्रकार यह देखते हैं कि ज्ञान कर्म का पूरक है ।

भवेन्मुक्तिर्द्विजश्रेष्ठ रैभ्यराजन्ययोर्ध्रुवम् ।
एवं तौ संशयेच्छेदं प्राप्तौ रेभ्यवसू द्विजाः ॥

इस प्रकार मुक्ति का स्वरूप देखकर निश्चित ही रैभ्य और राजा वसू और ब्राह्मण का संशय मिट गया ।

वृहस्पतेस्ततो धिष्ण्याज्जग्मतुर्निजमाश्रमम् ॥

बृहस्पति भी, जो बुद्धिमानों में श्रेष्ठ है, अपने आश्रम को वापस लौट आये।

सूत उवाच–

तस्मात्कर्माणि कुर्वीत ब्रह्मार्पणधिया नरः।

तत् कर्म ज्ञानमुक्तिं च ददाति न बन्धकृत् ॥

(पुरुषार्थ सुधानिधि अ० ११)

सूत जी बोले– इस प्रकार कर्म करते हुए जो नर कर्मों को भगवान् को अर्पण कर देता है वही कर्म ज्ञान मुक्ति देता है और कर्म बन्धन का कारण नहीं होता।

गंगायां मरणं चैव दृढ भक्तिश्च केशवे।

ब्रह्मविद्याप्रबोधश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥

परम पावनी गंगाजी के तट पर शरीर का छुटना, भगवान विष्णु में अचल भक्ति का होना और ब्रह्मविद्या को जान लेना यह साधारण तप का फल नहीं, बहुत कठिन तप करने पर इनकी प्राप्ति होती है।

विष्णुरुवाच–

क्षेत्रेस्मिन् योर्चचेद्भक्त्या मंत्रेणानेन मां शिव।

ब्रह्म हत्यादि पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

हे देवेश, देवों के देव महादेव आपके काशी क्षेत्र में षडक्षर मंत्र से जो मेरी पूजा करेगा उस मनुष्य को मैं ब्रह्महत्यादि पापों से रहित कर दूँगा।

अतएव ब्रह्मवैवर्ते प्रश्न प्रति वचनाभ्यां वाराणस्यां विशेषोऽभिहितः।

तथा –

''जितेन्द्रियः पापविवर्जिताश्च शान्ता महान्तो मधुसूदनाश्रयाः।

अन्येषु तीर्थेष्वपि मक्तिभाजो -भवन्ति काश्यामपि को विशेषः ॥''

इति दीपकप्रश्ने गुरुणोत्तरितं–

विशेषं शृणु वक्ष्यामि काश्याः कथयतो मम ।
कृतानि साधनान्यत्र स्वल्पान्यपि महामते ॥
भवति काशीमाहात्म्यात्सिद्धान्येव न संशयः।
अन्यत्र साधुसुकृतैः कृतैर्मुच्येत वा न वा ॥
अत्र साधनवैकल्ये काशीपूर्ण प्रकल्पयेत् ।।इति।। (ब्रह्मपुराण)

इसलिये ब्रह्म वैवतपुराण में प्रश्नोत्तररुप में वाराणसी की विशेषता का इस प्रकार वर्णन किया गया है– जितेन्द्रिय पाप रहित, शान्त, उच्चविचार वाले विष्णु-भक्त दूसरे तीर्थों में भी जब मुक्त हो जाते हैं तो यदि ऐसे लोग काशी में मुक्त हो जाते हैं तो काशी की क्या विशेषता है? इस प्रश्न का गुरु जी उत्तर देते हैं–

अब मैं अन्य तीर्थों से काशी की विशेषता को कह रहा हूँ तुम सुनो- हे महामति? थोड़े से उपाय करने पर भी यहाँ वे सिद्ध हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

अन्य क्षेत्रों में अच्छे कर्मों को करने पर भी मुक्ति होती है या नहीं इसमें सन्देह रहता है । काशी में साधनों की कमी हाने पर भी कार्य की सिद्धि हो जाती है ।

अष्टाङ्गदिभिरन्यैश्च तपो यज्ञव्रतादिभिः।
साधितैः पाक्षिकी सिद्धिरविमुक्तें निरर्गला ॥

अष्टङ्गादि योग, तप, यज्ञादि तथा अन्य यत्नों से मोक्ष प्राप्त हो अथवा न हो सन्देह ही रहता है परन्तु काशी में मोक्ष की सिद्धि निश्चित है ।

अनाराध्य महेशानमनवाप्य च काशिकाम् ।
योगद्युपायविज्ञोपि न निर्वाणमवाप्नुयात् ।।३३।।

योगादि उपायों के जानने वाले भी यदि चाहें कि बिना महेश्वर की आराधना तथा काशी लाभ किये बिना मोक्ष पावें तो यह कदापि नहीं हो सकता ।

काश्यांदुर्मरणदोषाभावः–

नाप्यत्र दुर्मरणदोषोस्ति । तदुक्तं–

सूच्यग्रमात्रमपिनास्ति ममास्पदेऽस्मिन्
स्थान सुरैश्चावमृतस्य न यत्र मुक्तिः ।
भूमौ जले वियति वा भूवि मध्यतो वा
सर्पाग्निदस्युपविभिर्निहतस्त जन्तोः । इति–

और स्थानों में दुर्मरण का दोष लगता हैं, किन्तु काशी में वह दोष नहीं लगता जैसा कि पद्मपुराण में लिखा है। काशी क्षेत्र में सुई के अग्रभाग के समान भी कहीं कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ मरने पर मुक्ति नहीं मिलती हो, यहाँ तो देवता भी मुक्त हो जाते हैं। यहाँ भूमि में, जल में, आकाश में या भूमि के मध्य में कहीं भी सर्पदश से, आग से, डाकुओं द्वारा मरने से अथवा बज्र से मरने पर भी प्राणी की मुक्ति होती है। अकाल मृत्यु वाले भी मुक्त हो जाते हैं।

काश्यामन्तरिक्षमरणादिदोषाभावः

अन्यच्च तीर्थान्तरे अन्तरिक्षादिमरणदोषोऽस्तिसोप्यत्रनास्ति । तदुक्तं–

भूमौ जलेऽन्तरिक्षे वा कुत्रापि च मृतोद्विजः ।।

काशी में अन्तरिक्ष में मरण से क्या दोष है अन्य तीर्थ में अन्तरिक्ष में मरण से दोष है परन्तु यहाँ नहीं है कहा गया है भूमि में, जल में, अन्तरिक्ष में यहाँ जहाँ कहीं भी मरण हो जाता है तो वह मुक्त हो जाता है।

काश्यां रुद्रस्थली सा तु पद्यते वेदवादिभिः ।
रुद्रस्थल्यां मृताये वै कृमिकीटपतङ्गकाः ।।

पशुपक्षिमृगामर्त्याम्लेच्छा वा ऽप्यथ दीक्षिताः ।
तेषान्तु रुद्रीभूतानां पुनरावृत्तिरत्र न ॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं समुपार्जितम् ।
रुद्रस्थलीम्प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ॥
अकामो वा सकामो वा तिर्यग्योनिगतोऽपि वा ।
रुद्रस्थल्यॉं त्यजन्प्राणात्परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥ (का.ख.)

वेदों को जानने वाले विद्वान् काशी को रुद्रस्थली कहते हैं। इस रुद्र स्थली में जो भी क्रिमि, कीड़े, पतिंगे, पशु, पक्षी, मृग, मनुष्य, म्लेच्छ (जिन्हें दीक्षा नहीं दी जाती) अथवा जो दीक्षित हैं। उन रुद्र स्वरूप प्राणियों का इस लोक में पुनर्जन्म नहीं होता।

हजारों जन्मों में मनुष्यों ने जो पाप संचित किये हैं। सब रुद्रस्थली में प्रवेश करते ही नष्ट हो जाते हैं। इच्छाओं से रहित या इच्छाओं वाला अथवा पशुयोनि में गया हुआ प्राणी भी रुद्रस्थली में मरने मात्र से मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

तां काशीं प्राप्य वृत्रारे वृत्रहत्यापनुत्तये ।
समाराधयविश्वेशं विश्वमुक्तिः प्रदायकम् ॥

हे इन्द्र ऐसी काशी को प्राप्त करके तुम वृतासुर की हत्या का प्रायश्चित करने के लिये संसार को मुक्ति देने वाले शिवजी की आराधना करो।

एक एवहि विश्वेशो मुक्ति दो नान्य एव हि ।
स एव काशीं सम्प्राप्य मुक्तिं यच्छति नान्यतः ॥

एकमात्र विश्वेश्वर ही मुक्ति दाता हैं और कोई नहीं वह भी काशी में पहुँचने पर मुक्ति देते हैं, और स्थान में नहीं।

अनराध्य महेशानमनवाप्य च काशिकाम् ।
योगाद्युपायविज्ञो पि न निर्वाणमवाप्नुयात् ।।

योगादि उपायो के जानने वाले भी यदि चाहें कि बिना महेश्वर की आराधना तथा काशी लाभ किये मोक्ष पावें तो यह कदापि नहीं हो सकता ।

ब्रह्महत्या पलायेत वेपमाना निराश्रया ।
अन्येषामपि पापानां महापापजुषामपि ।।
नाशयित्री पराकाशी विश्वेशमधिष्ठिता ।
महापातकतोमुक्तिः काश्यामेवशतक्रतोः ।।

विश्वेश्वर द्वारा अधिष्ठित काशी के दर्शन मात्र से निराश्रित कांपती हुई ब्रह्महत्या भाग जाती है, और पापियों के पाप भी भाग जाते हैं। हे देवराज इन्द्र काशी के दर्शन से सभी महापापों से मुक्ति हो जाती है ।

यदि त्वं देवराजे मां ब्रह्महत्यां सुदुस्त्यजाम् ।
अपानुनुत्सुस्तद्याहि काशीं विश्वेशपालिताम् ।।

हे इन्द्र यदि तुम इस कठोर ब्रह्म हत्या को दूर करना चाहते हो तो विश्वेश्वर द्वारा रक्षित काशी में जाओं ।

भैरवस्यापि हस्ताग्रात्पतद्वैधससंशिरः।
यत्रानन्दवने तत्र वृत्रशत्रो व्रज द्रुतम् ।।

काल भैरव के हाथ से भी ब्रह्म का एक सिर गिर पड़ा था उन्हें भी काशी में ही मुक्ति मिली थी इसलिये हे इन्द्र तुम शीघ्र आनन्द वन (काशी) में जाओं ।

नान्यत्किञ्चित् क्वचिद् दृष्टं ब्रह्म हत्यामहौषधम् ।
राजधानीं परित्यज्य शक्र विश्वेशितुः पुरीम्।।

हे इन्द्र इसके अतिरिक्त मैंने ब्रह्महत्या नाशक कोई उपाय कहीं कुछ नहीं देखा। अतः तुम अपनी राजधानी छोड़कर विश्वेश्वर की राजधानी काशी चले जाओ। वहाँ मोक्ष

के चारों साधन इस पुरी में सदा उपस्थित रहते हैं। जैसे शिवपूजन, रुद्रीजाप, उपवास और काशी में शरीर त्याग।

यहाँ प्रतिदिन का चलना, फिरना, उठना-बैठना ही यहाँ तपस्या के समान है। साधारण जीव यहाँ जो कुछ सुनते हैं वहीं वेद श्रवण के समान फल देता है। ऐसी उत्तमपुरी काशी में जो बहुत ही पुण्यवान् होते हैं वहीं निवास करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते है।

महासंसारतो मुक्तिः काश्यामेव न चान्यतः।
निर्वाणनगरी काशी काशी सर्वाघससङ्घहृत् ॥
विश्वेशितु : प्रिया काशी द्यौः काशी सदृशी नहि।
ब्रह्महत्याभयं यस्य यस्य संसारतोभयम्
जातुचित्तेन न त्याज्या काशिका मुक्तिकारिका ॥

इस भवसागर से मुक्ति काशी में ही मिलती हैं, अन्य स्थान पर नहीं। काशी मोक्ष दायनी तथा सभी पाप समूहों का नाश करने वाली हैं। यह काशी विश्वेश्वर को अत्यन्त प्यारी है।

स्वर्ग भी काशी जैसा नहीं है। यहाँ के निवासियों को न ब्रह्म हत्या का भय है और न इस संसार से ही भय है, इस मुक्ति दायनी काशी को कभी भी हृदय से नहीं भुलाना चाहिए।

एतत्स्मृतं प्रियतमं मम देवि नित्यं पुण्यंपवित्रतरुगुल्मनिकायजुष्टम्।
यस्मिन्मृतास्तनुभृतः पद्माप्नुवन्ति मूर्खागमेन रहिता नहि संशयोऽत्र॥

(सं० संहि०)

हे पार्वती देवि यह काशी क्षेत्र हमको बहुत प्रिय है और यह अत्यन्त पुण्य रुप तथा नाना प्रकार के वृक्ष गुल्म लताओं के समुह से युक्त है। काशी क्षेत्र में मरने वाला प्राणी परम पद को प्राप्त करता है–विधि निषेध शास्त्र से रहित हो के भी परम पद को प्राप्त होता है।

योजनानां शतस्थोऽपि योऽविमुक्तं स्मरेद्यदि ।
बहुपातकपूर्णोऽपि सपापैर्न प्रबाध्यते ॥

यदि एक सौ योजन पर स्थित रह कर भी काशी का स्मरण करे तो बहुत पाप कर्म से पूर्ण होने पर भी वह प्राणी पापों से रहित हो जाता है।

वृहस्पते रिति वचो निशम्य स सहस्रदृक्।
आयाद् द्रुततरं काशीं महापतकघातुकाम् ॥

बृहस्पति के इस वचन को सुनकर वह हजारों नेत्रों वाला इन्द्र शीघ्र ही महापापों का नाश करने वाली काशी में आये। त्रिपथगा में स्नानान्तर 'धर्मेंश्वर' की आराधना करने लगे।

उनकी सेवा से प्रसन्न होकर महादेव उस लिंग से प्रकट हुए और इन्द्र से बोले– शचीपते ! क्या चाहते हो? अपना अभीष्ट कहो।' इन्द्र ने करबद्ध होकर निवेदन किया– 'हे सर्वज्ञ! आपके समक्ष मेरी अभिलाषा छिपी है क्या ?' देव बोले ठीक तो तुम्हारी कामना पूरी हो और उसी क्षण वहाँ तीर्थ निर्मित करते हुए इन्द्र से उसमें स्नान करने को कहा। इन्द्र ने स्नान किया। स्नान के साथ ही ब्रह्म हत्या छूट गयी और 'शतमखी' की कांति भी प्राप्त की। तब से इन्ही धर्मेश्वर के पास 'धर्मकूप तीर्थ' प्रख्यात है।

गङ्गायां मरणं चैव दृढ़भक्तिश्च केशवे ।
ब्रह्मविद्या प्रबोधश्चानल्पस्य तपसः फलम् ॥

परम पावनी गंगाजी के तट पर शरीर का छूटना, भगवान् विष्णु में अचल भक्ति का होना और ब्रह्म विद्या का जान लेना यह साधारण तप का फल नहीं, बहुत कठिन तप के पश्चात् इनकी प्राप्ति होती है।

कुत्रचिच्च शमं वर्धेत् कुत्रचित्पापसंक्षयः ।
सर्वेषां कर्मणां नाशो नास्ति काशीपुरीं बिना ॥७२॥

(ज्ञानसंहिता अ० ५१)

कोई तीर्थ पुण्य को बढ़ाता है तथा कोई तीर्थ पाप का नाश करता है तथापि समस्त कर्मों का नाश काशी बिना नहीं होता इसलिए काशीवास ही मुक्ति को देने वाला है तथा समस्त कर्म को नाश शीघ्र करता है ।

यस्य तत्त्वज्ञानं नास्ति तस्य गङ्गायां कुरुक्षेत्रादौ यावद्देहावसानं
तावत् स्थितौ सत्यां तत्वज्ञानावाप्तौ मोक्षो भवतीति भावः।

तात्पर्य यह है कि जिसे तत्व ज्ञान की प्रप्ति हो चुकी उसे तो गंगा, कुरुक्षेत्र आदि के सेवन की आवश्यकता नहीं परन्तु जिसे तत्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई उसे मरण पर्यन्त गंगा के तट पर या कुरुक्षेत्र में निवास करने से अन्त में ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और उसका मोक्ष हो जाता है ।

वाराणस्यां मुनिः पूर्वं स्थितोभोगपराङ्मुखः ।
विहाय च फलं सर्वं शुभाशुभस्य कर्मणः ।। (धर्मसंहिता अ० २)

आदिकाल के ऋषि एवं महात्मा साधु सन्यासी अपने सभी भोगो को त्याग कर काशी में बास कर पूर्व संचित पाप पुण्य को त्याग कर वाराणसी में ही निवास करते हैं एवं उच्चकोटि के बड़े-बड़े विद्वान् निवास करते हैं अत: काशी धन्य है ।

विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरुचिर्नरः ।
इह क्षेत्रे मृतो यो वै संसारं न पुनर्वसेत् ।।

अगर विषयों में आसक्त चित्त वाला पुरुष हो और अपना कर्म-धर्म का त्याग करने वाला भी हो तो इस काशी में मरने से फिर जन्म नहीं होता ।

ये काश्यां संशयाविष्टा मुक्तौ तेषां शरीरिणाम्।
प्राणप्रयाणसमये प्रमाणं परमेश्वरः ।।

काशी में मरने से मुक्ति मिलती है या नहीं इस विषय में कुछ लोगों को संदेह होता है। परन्तु भगवान् शंकर इसका प्रमाण मरने के समय दे देते हैं। जिस समय

जीव अपने देह का परित्याग करता है उस समय भगवान् सदाशिव तारकमंत्र के उपदेश के द्वारा मुक्त कर देते हैं और इसका प्रमाण उस जीव को मिल जाता है।

पुण्यानि पापान्यखिलान्यशेषं सार्धं सबीजं सशरीमार्ये ।

इहैव संहृत्य ददाति बोधं यतः शिवानन्दमवाप्नुवन्ति ।।

(काशीखण्ड)

हे आर्ये जिस समय जीव काशीपुरी में शरीर का परित्याग करता है उस समय भगवान् शंकर उसके समस्त पापों और पुण्यों को बीज सहित नष्ट कर देते हैं और उन्हें ऐसा उत्तम ज्ञान देते हैं कि उन्हें शिव के समान आनन्द प्राप्त होता है।

अनिदमुदयमाद्यं धाम वामार्द्धकान्तं ,

स्वमहिमरसिकं यत्स्वानुभूत्यैकमानम् ।

अनघरतम/पास्तद्द्वैतमात्मावबोधं,

प्रकटयति पशूनां कालपाकेन काश्याम् ।।

भगवान् शंकर का परम प्रकाशमान अर्धनारीश्वररूप नेत्रादि से अगोचर है। अपनी महिमा में ही विराजमान है।

अपने ही अनुभव से इसका ज्ञान हो सकता है। इसके जानने में बाहरी प्रमाणों से सहायता नहीं मिल सकती यह परम पवित्र तथा निर्मल आनन्द रूप है। इसके दर्शनमात्र से द्वैत भाव दूर हो जाता है। इस प्रकार का अपना अलौकिक तेजस्वी रूप भगवान् शंकर अज्ञानी जीव को उसके सांसारिक भोग पूरे कराकर दिखा देते है। इस अलौकिक रूप का दर्शन करते ही जीव मुक्त हो जाता है।

रथान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चाण्डालवेश्मन्यथवा श्मशाने ।

कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभतेऽत्र मोक्षम्।।

(सनत्कुमारसंहिता)

इस काशीपुरी की गलियों में मल-मूत्र से दूषित स्थानों में चाण्डाल के गृह में या श्मशान भूमि में कहीं भी विधि से या अविधि से मरने पर जीव मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

रेणुका सूकरः काशी काली कालौ वटेश्वरौ ।

कालिञ्जरो महाकाल ऊषरा अष्टमुक्तिदाः ।। (वामन पुराण)

काशी पाप और पुण्य के लिए ऊषर है । काशीपुरी में चाहे पुण्य कर्म किये जाऐं चाहे पाप कर्म किन्तु दोनों में से एक का भी फल नहीं मिलता ।

जन्तूनां कर्म बीजानां यत्र देहविसर्जने ।

न जातुचित्प्ररोहोऽस्ति हरवृष्ट्याप्तकर्मणाम् ।।

जहाँ शरीर छोड़ने पर मनुष्यों के कर्म रूपी बीज पुनः नहीं उग पाते हैं, इसमें कारण है भगवान शिवजी की कृपा दृष्टि ।

मन्मना मम भक्तश्च मयि सर्वार्पितक्रियः ।

यथा मोक्षमिहाप्नोति ह्यन्यत्र न तथा क्वचित् ।।

(मत्स्यपुराण १८०/५१)

भगवान शंकर ने कहा है के अपने सभी कर्म हमको अर्पण कर देने पर हमारे भक्तों को जैसा मोक्ष यहाँ मिलता है, वैसा अन्यत्र नहीं ।

काशी तथा विश्वेश्वर माहात्म्य

सूत जी कहते हैं – मुनीश्वरो । मैं संक्षेप में ही काशी तथा विश्वेश्वर के परम सुन्दर माहात्म्य का वर्णन करता हूँ, सुनो । एक समय की बात है कि पार्वती देवी ने लोक-हित की कामना से बड़ी प्रसन्नता के साथ भगवान् शिव से अविमुक्त क्षेत्र और अविमुक्त लिंग का माहात्म्य पूछा । तब शिव ने कहा– यह काशी पुरी सदा के लिये मेरा गुह्यतम क्षेत्र है और सभी जीवों की मुक्ति का सर्वथा हेतु है । इस क्षेत्र में सिद्धगण सदा मेरे व्रत का आश्रय ले नाना प्रकार के वेष धारण किये मेरे लोक को पाने की इच्छा रखकर जितात्मा और जितेन्द्रिय हो नित्य महायोग का अभ्यास करते हैं । उस

उत्तम महायोग का नाम है पाशुपत योग। उसका श्रुतियों द्वारा प्रतिपादन हुआ है। वह भोग और मोक्ष रुप फल प्रदान करने वाला है। महेश्वरी काशीपुरी में निवास करना मुझे सदा ही ज्यादा अच्छा लगता है। जिस कारण से मैं सब कुछ छोड़कर काशी में रहता हूँ, उसे बताता हूँ सुनो। जो मेरा भक्त तथा मेरे तत्व का ज्ञानी हैं, वे दोनों अवश्य ही मोक्ष के भागी होते है। उनके लिये तीर्थ की अपेक्षा नहीं है। विहित और अविहित दोनों प्रकार के कर्म उनके लिये समान हैं। उन्हें जीवन्मुक्त ही समझना चाहिये। वे दोनों कहीं भी मरें, तुरन्त ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यह मैंने निश्चित बात कही है। सर्वोत्तम शक्ति देवी उमें! इस परम उत्तम अविमुक्त तीर्थ में जो विशेष बात हैं, उसे तुम मन लगाकर सुनो! सभी वर्ग और समस्त आश्रमों के लोग चाहे वे बालक, जवान या बूढ़े कोई भी हो यदि इस पुरी में मर जायें तो मुक्त हो ही जाते हैं, इसमें संशय नहीं हैं। स्त्री अपवित्र हो या पवित्र, कुमारी हो या विवाहिता, विधवा हो या बन्ध्या, रजस्वला, प्रसूता, संस्कारहीन अथवा जैसी तैसी-कैसी ही क्यों न हो, यदि इस क्षेत्र में मरी हो तो अवश्य मोक्ष की भागिनी होती है। इसमें संदेह नहीं हैं स्वेदज, अण्डज, उद्भिज अथवा जरायुज प्राणी जैसे यहाँ मरने पर मोक्ष पाता है वैसे और कहीं नहीं पाता। देवी यहाँ मरने वाले के लिये न ज्ञान की अपेक्षा है न भक्ति की, न कर्म की आवश्यक्ता है न दान की, न कभी संस्कृति की अपेक्षा है और न धर्म की ही; यहाँ नाम कीर्तन, पूजन तथा उत्तम जातिकी भी अपेक्षा नहीं होती। जो मनुष्य मेरे इस मोक्षदायक क्षेत्र में निवास करता है, वह चाहे जैसे मरे उसके लिये मोक्ष की प्राप्ति सुनिश्चित है प्रिये! मेरा यह दिव्यपुर गुह्यसे भी गुह्यतर है। ब्रह्मा आदि देवता भी इसके महात्म्य को नहीं जानते। इसलिये यह महान क्षेत्र अविमुक्त नाम से प्रसिद्ध हैं; क्योंकि नैभिष आदि सभी तीर्थो से यह श्रेष्ठ है। यह मरने पर अवश्य मोक्ष देने वाला है। धर्म का सार सत्य है, मोक्ष का सार समता है तथा समस्त क्षेत्रों एवं तीर्थो का सार यह 'अविमुक्त' तीर्थ (काशी) हैं– ऐसी विद्वानों की मान्यता है। इच्छानुसार भोजन, शयन, क्रीडा तथा विविध कर्मों का अनुष्ठान करता हुआ भी मनुष्य यदि इस अविमुक्त तीर्थ में प्राणों का परित्याग करता है तो उसे मोक्ष मिल जाता है। जिसका चित्त विषयों में आसक्त है और जिसने धर्म की रुचि त्याग दी है, वह भी यदि इस क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होता है तो पुनः संसार-बन्धन में नहीं पड़ता। फिर जो ममता से रहित, धीर,

सत्वगुणी, दम्भहीन, कर्मकुशल और कर्तापन के अभिमान से रहित होने के कारण किसी भी कर्म का आरम्भ न करने वाले हैं, उनकी तो बात ही क्या है। वे मुझमें ही स्थित हैं। इस काशी पुरी में शिव भक्तो द्वारा अनेक शिवलिङ्ग स्थापित किये गये है। पार्वती! वे सम्पूर्ण अभीष्टों को देने वाले और मोक्षदायक हैं। चारों दिशाओं में पाँच-पाँच कोस फैला हुआ यह क्षेत्र 'अविमुक्त' कहा गया हैं, वह सब ओर से मोक्षदायक है। जीव को मृत्युकाल में यह क्षेत्र उपलब्ध हो जाय तो उसे अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। यदि निष्पाप मनुष्य काशी में मरे तो उसका तत्काल मोक्ष हो जाता है और जो पापी मनुष्य मरता है, वह कायब्यूहों को प्राप्त होता है। उसे पहले यातना का अनुभव करके ही पीछे मोक्ष की प्राप्ति होती है। सुन्दरी! जो इस उविमुक्त क्षेत्र में पातक करता है, वह हजारों वर्षो तक भैरवी यातना पाकर पाप का फल भोगने के पश्चात् ही मोक्ष पाता है। शतकोटि कल्पों में भी अपने किये हुए कर्म का क्षय नहीं होता। जीव को अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्म नरक देने वाला होता है, केवल शुभ कर्म स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला होता है तथा शुभ और अशुभ दोनों कर्मों से मनुष्य योनि की प्राप्ति बताई गयी है। अशुभ कर्म की कमी और शुभ कर्म की अधिकता होने पर उत्तम जन्म प्राप्त होता है। शुभ कर्म की कमी और अशुभ कर्म की अधिकता होने पर यहाँ अधम जन्म की प्राप्ति होती है। पार्वती! जब शुभ और अशुभ दोनों ही कर्मों का क्षय हो जाता है, तभी जीव को सच्चा मोक्ष प्राप्त होता है। यदि किसी ने पूर्व जन्म में आदर पूर्वक काशी का दर्शन किया है, तभी उसे इस जन्म में काशी में पहुँचकर मृत्यु की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य काशी जाकर गंगा में स्नान करता है, उसके क्रियमाण और संचित कर्म का नाश हो जाता है। परन्तु प्रारब्ध कर्म भोगे बिना नष्ट नहीं होता, यह निश्चित बात है, जिसकी काशी में मुक्ति हो जाती है, उसके प्रारब्ध कर्म का भी क्षय हो जाता है। प्रिये! जिसने एक ब्राह्मण को भी काशी वास करवाया है, वह स्वयं भी काशीवास का अवसर पाकर मोक्ष लाभ करता है।

सूत जी कहते हैं– मुनिवरों ! इस तरह काशी का तथा विश्वेश्वर लिंग का प्रचुर माहात्म्य बताया गया है जो सत्पुरुषों को भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है।

विभिन्न सम्प्रदायों के मतानुसार मोक्ष

श्री गदाधर भट्टाचार्य ने मुक्तिवाद नामक ग्रन्थ के अन्त में विभिन्न मतों में वर्णित मुक्ति के भिन्न-भिन्न रुपों को दर्शाया है, जो इस प्रकार है–

१– **मोक्षः–स्वातन्त्र्यं मृत्युर्वेति चार्वाकाः ।**

चार्वाक के मत से स्वतंत्रापूर्ण जीवन ही शरीर का मोक्ष है ।

२– **उत्तरार्धभावेन निरन्तरोत्पादक्लेशादिदोषदूषितबोधसंततिवेच्छेद इति माध्यमिकाः ।**

माध्यमिकों के अनुसार घटते क्रम में निरन्तर उत्पन्न होने वाला क्लेश आदि दोषों का ज्ञान जिससे पुनर्जन्म न हो यही मोक्ष है ।

३– **पुनर्भावनाप्रकर्षपरिलब्धपरिशुद्धचित्तसंतान इति योगाचाराः।**

योगाचार के मत से बार-बार अंतः भावना के द्वारा उत्पन्न हुआ शुद्ध चित्त का ज्ञान ही मोक्ष है ।

४– **प्रलीननिखिलोपाधेः क्षेत्रज्ञस्य सततोर्द्ध्वगतिरिति जैनाः।**

जैन मतानुसार जिसने क्षेत्रज्ञ (जीव) की उपाधि उस उपाधि के द्वारा निरन्तर ऊर्ध्वगति अर्थात् ऊपर के श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करना ही मोक्ष है।

५– **आनन्दमयपरमात्मनि जीवात्मलय इति त्रिदण्डिनः।**

त्रिदण्डियों के मतानुसार आनन्दमय परमात्मा में जीवात्मा का लय हो जाना ही मोक्ष है ।

६– **जीवस्य लिङ्गशरीरापगम इति भास्करीयाः ।**

भास्करीय मतानुसार जीव का लिंग शरीर से मुक्त हो जाना ही मोक्ष है ।

७– **अक्षयशरीरादिलाभः।**

नष्ट न होने वाली शरीर की प्राप्ति अर्थात् सूक्ष्म शरीर का ब्रह्म में लीन हो जाना ही मोक्ष है ।

८– विष्णुभक्तिधर्माचरणाद्विष्णुलोकगमनं वेति वैष्णवाः।

वैष्णव मतानुसार विष्णु भक्ति और धर्माचरण के द्वारा विष्णुलोक की प्राप्ति ही मोक्ष है।

९– सर्वकर्तृत्वमेकं विहाय वासदेवस्य सर्वज्ञत्वादीनां कल्याणगुणानामाप्तिमत्त्वे सति भगवद्याथात्म्यानुभव इति रामानुजीयाः।

रामानुजीय मतानुसार सारे कर्मों को छोड़कर वासुदेव को ही सर्वज्ञाता जानकर सारे कल्याण के गुण के जो धाम है इस प्रकार सब में भगवत् आत्मा का अनुभव ही मोक्ष है।

१०– जगत्कर्तृत्व, लक्ष्मीपतित्व, श्रीवत्सवर्ज भगवर्ज भगवज्ज्ञानायत्तिनिर्दुःख-पूर्णसुखमिति माध्वाः ।

माध्वानुयायी के मतानुसार जगत का निर्माण करने वाले, लक्ष्मी के पति श्रीवत्सचिन्ह से सुशोभित भगवान् के ज्ञान से सारे दुःख निवृत्ति से पूर्ण सुख को प्राप्त करना ही मोक्ष है।

११– द्विभुजकृष्णेन सह स्वांशभूतानां जीवानां गोलोके लीलानुभव इति वल्लभीयाः ।

वल्लभ मतानुसार द्विभुज कृष्ण के साथ अपने अंशभूत जीवों के साथ गोलोक में लीला का अनुभव ही मोक्ष है।

१२– पारमैश्वर्यप्राप्तिरिति माहेश्वराः ।

माहेश्वर मतानुसार परम ऐश्वर्य की प्राप्ति ही मोक्ष है।

१३– चन्द्रचूडवपुषः सतः पार्वत्यालिङ्गनमिति कापालिकाः ।

कापालिक मतानुसार चन्द्रचूड़ (शंकरजी) के शरीर में पार्वतीकी तरह मिले हुये स्वरुप की प्राप्ति ही मोक्ष है।

१४- पूर्णात्मतालाभ इत्यभिनवगुप्ताचार्याः।

अभिनवगुप्ताचार्य के मतानुसार पूर्ण आत्मता लाभ ही मोक्ष है ।

१५- पाशुपतधर्माचरणात्पशुपतिसमीपगमनमेव पुनरावृत्तिरहितमिति पाशुपताः।

पाशुपत मतानुसार पाशुपत धर्म का आचरण करते हुये पशुपति के पास जाकर जन्म मरण के बार-बार के बन्धन से मुक्त होना ही मोक्ष है।

१६- पंचाग्निविद्याद्युपासनैरचिरादिमार्गेण हिरण्यगर्भप्राप्तिरिति हैरण्यगर्भाः।

हैरण्यगर्भानुयायी मतानुसार पंचाग्नि विद्या की उपासना से चिरमार्ग में जाकर हिरण्यगर्भ (ब्रह्म) की प्राप्ति ही मोक्ष कहा गया है ।

१७- पारदरसपानेन देहस्थैर्यमिति रसेश्वरवादिनः ।

रसेश्वर वादियो के मतानुसार पारदरस के पान से देह की स्थिरता ही मोक्ष है ।

१८- आत्यन्तिकैकविंशतिदुःखध्वंसः ।

विद्वानों के मतानुसार आत्यन्तिक २१ प्रकार के दुःखों का नाश ही मोक्ष है ।

१९- स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावासमानकालीनदुःखध्वंस । संसारकालीन-दुःखध्वंसस्य मोक्षत्ववारणाय कालीनान्तं दुःखविशेषणम् अस्मदीय-दुःखसमानकालीनदुःखमोक्षेऽव्याप्तिवारणाय स्वसमानाधिकरणेतिदुःख-विशेषणमिति तार्किकाः ।

तार्किकों के मतानुसार स्वसमान अधिकरण दुःख का अभाव जो पूर्व जन्म के दुःख हैं उनका निराकरण करके वर्तमान दुःखों को दूर करें।

संसार के दुःख का नाश करके मोक्ष को वरण करने के लिये समय से प्राप्त दुःख जो स्वयं का दुःख है उसको दूर करके मोक्ष को प्राप्त करें। अपने दुःखों का निवारण ही मोक्ष है ।

२०- स्वर्गादिरिति मीमांसकाः ।

स्वर्गादि की प्राप्ति मोक्ष है यह मीमांसकों का मत है ।

२१– दुःखसाधनशरीरनाशे नित्यनिरतिशयसुखाभिव्यक्तिरिति तदेक देशिनः।

जो दु:ख के साधन शरीर का नाश करते हैं उसका निवारण करके नित्य निरतिशय सुख की अभिव्यक्ति ही मोक्षं है।

२२– नित्यसुखसाक्षात्कार इति भाट्टाः ।

भट्टों के मतानुसार नित्य सुख का साक्षात्कार ही मोक्ष है।

२३– आत्यन्तिकदुःखप्रागभावपरिपालनमिति प्राभाकराः ।

आत्यन्तिक दु:खों के अभाव के पालन को ही प्रभाकर मतानुयायी मोक्ष कहते है।

२४– परापश्यन्तीमध्यमावैखरीति वाणीचतुष्टये प्रथमायाः पराख्याया ब्रह्म - रूपाया वाण्या दर्शनमिति पाणिनीयाः ।

पाणिनीय मतानुसार– चार प्रकार की वाणी १–परा, २–पश्यन्ती, ३–मध्यमा, ४–वैखरी, चारों में प्रथम परा के द्वारा ब्रह्म के रुप का दर्शन ही मोक्ष है।

२५– प्रकृतिपुरुषविवेकदर्शनात्तदविवेकनिवृत्तौ पुरुषस्य स्वरूपेणावस्थानमिति साङ्ख्ययोगिनः ।

साङ्ख्यायोगियों के मतानुसार प्रकृति और पुरुष का ज्ञान करके ज्ञान से ही पुरुष के स्वरुप को प्राप्त करना ही मोक्ष है।

२६– चित्तानुत्पादनमित्यन्ये ।

चित्त में उत्पन्न सङ्कल्पों का नाश ही मोक्ष है।

२७– संसारोपरम इत्यपरे ।

संसार से विरत्ति होना ही मोक्ष है।

२८– आत्महानिरित्येके ।

आत्मा को परमात्मा में मिलकर एक हो जाना ही मोक्ष है।

२९– निखिलदुःखनिवृत्तिपुरस्सरं स्वात्मानन्दावाप्तिः ।

सारे दु:खों की निवृत्ति करके एवं आत्मा के आनन्द की अनुभूति।

(महामहोपाध्याय गदाधर भट्टाचार्य प्राचीन नवीन मुक्तिवाद सङ्क्षेप पृ०८२)

३०– विद्यानिरस्ताविद्यातत्कार्यब्रह्मभावापत्तिः ।

अविद्या का नाश करके विद्या के द्वारा ब्रह्म भाव की प्राप्ति ही मोक्ष है ।

ध्यायेत् कुण्डलिनीं **सूक्ष्मां** मूलाधारनिवासिनीम् ।
तामिष्टदेवतारूपां सार्द्धत्रिवलयान्विताम् ॥
कोटिसौदामिनीभासां स्वयंभूलिङ्गवेष्टिनीम् ।
तामुत्थाप्य **महादेवीं** प्राणमन्त्रेण **साधकः** ॥ (तंत्रसार)

अर्थात् मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी साढ़े तीन फेरा से स्वयम्भू लिंग को वेष्टन करती हुई कोटि बिजली छटावाली जो प्रसुप्त होकर ब्रह्मरंध्रसुसुम्ना नाडी को अवरुद्ध कर जीव को अज्ञान दशा में रखती है, उस कुंडलिनी चित् शक्ति को प्राणायामादि योग– क्रिया से उत्थापन (चैतन्य) करनें से वह षट्चक्रों को वेधकर सहस्त्रार में पहुँचती है जहाँ परब्रह्म सदा शिव का निवास है और उनके साथ मिल जाने पर जीव शिव हो जाता है, जिसकी संज्ञा मुक्ति है ।

अब उभयोक्त दोनों प्रकार के वाक्यों की एक वाक्यता–सामन्जस्य स्थापन के उद्देश्य से निम्न प्रमाण को उद्धृत करता हूँ, जिससे दोनों वाक्यों की अभिन्नता प्रस्फुटित हो जाएगी और संशय का उच्छेद हो जाएगा ।

चिच्छक्तिरेव काश्याः स्वरूपार्थवाचिका **तर्हि तस्या** वाराणसीत्याख्यां कागतिरिति **संशयश्चेत् ततोऽ**वधीयताम् ।

चिच्छक्तिः सुषुम्ना ख्यानाडी **च । अन्या नाडी** चिद्‌भासया **सम्यगाभा** सितासती **प्रकाशते अतएव इयं हि** ब्रह्मप्रकाश **रूपिणी चिन्मयी ज्ञान प्रकाशतया अस्यास्तथात्वं** वेदतन्त्रादि ज्ञानप्रतिपादक **शास्त्रैः** । सुषुम्नाया एव ब्रह्मनाडीत्वं प्रतिपादितंतथा सर्वप्रकाशकतया चिच्छक्तिरेव स्वरूपकाशीत्वं **विज्ञाप्यते तथा– मयेदं काश्यते सर्वं सा काशी** परिकीर्त्यते ।

चित्त की शक्ति की तरह काशी के स्वरुप का वर्णन किया गया है। इस प्रकार से उस वाराणसी के इतिहास और गति के विषय में लोगों को संशय हो जाता है । अत: उसका अध्ययन इस प्रकार से है। चित्त शक्ति सुषुम्ना नाड़ी को कहते हैं । अन्य नाड़ी चित्त का केवत आभास मात्र है। जो सब प्रकार से भाषित होती है । प्रकाश करने के कारण ही इसको ब्रह्म प्रकाश रुपिणी कहा गया है, चित्‌मयी ज्ञान के प्रकाश के

स्वरुप का वर्णन वेद, तन्त्र, तथा ज्ञान का प्रतिपादन करने वाले सभी शास्त्रों में वर्णित किया गया है। सुषुम्ना ही ब्रह्मनाड़ी है तथा सभी विषयों का प्रतिपादन करना और सभी को प्रकाशित करना इसका कार्य है। इस प्रकार चित्त की शक्ति की तरह ही स्वरुप को प्राप्त कराना भी काशी का कार्य है। ब्रह्मस्वरुप को प्राप्त कराने के कारण से इसका नाम काशी प्रसिद्ध है।

प्रश्न यदि आत्मा ब्रह्म ही है तब उसका जीव नाम कब तक रहता है?

मनुरुवाच–

यावद्विषयभोगाशा जीवाख्या तावदात्मनः ।
अविवेकेन सम्पन्ना साऽप्याशा हि न वस्तुतः ॥१॥

मनु महाराज ने कहा–हे राजन्, पुरुष को (आत्मा को) जब तक विषय भोग की अभिलाषा बनी रहती है, तभी तक उसका जीव नाम रहता है। यह अभिलाषा भी अज्ञान के कारण ही उसे होती है, वास्तव में नहीं ॥१॥

विवेकवशतो याता क्षयमाशा यदा तदा ।
आत्मा जीवत्वमुत्सृज्य ब्रह्मतामेत्यनामयः ॥२॥

जब ज्ञान के द्वारा विषय भोग की अभिलाषा नष्ट हो जाती है, तब आत्मा अपना जीवरुप छोड़कर निर्विकार होकर ब्रह्मस्वरुप हो जाता है ॥२॥

ऊर्ध्वादधस्तथाऽधस्तात्पुनरूर्ध्वं व्रजंश्चिरम् ।
मा संसाराघट्टस्य चिन्तारज्जवां घटीभव ॥३॥

एकमात्र भोग की अभिलाषा ही जीव को स्वर्ग, नरक आदि में खीच ले जाती है, अतः उसे छोड़ देना चाहिए, हे राजन् , कर्मवश से ऊपर के लोक से नीचे के लोक में तथा नीचे के लोक से ऊपर के लोक में दीर्घ काल तक आवागमन कर रहे तुम संसार रुपी अरहट्ट की भोग चिन्ता रुपी रज्जु में घड़े के सदृश फँसे मत जाओं ॥३॥

इद ममाऽहमस्येति व्यवहारधनभ्रमम् ।
ये मोहात्परिसेवन्ते ह्यधस्ताद्यान्त्यधः शठाः ॥४॥

चिन्ता रज्ज्जु का विषयों के साथ बन्धन बतलाते हैं- ये पुत्र, कलत्र आदि मेरे हैं और मैं इन पुत्र, कलत्र आदि का हूँ, इस तरह के मोह से व्यवहाररुपी दृढ़ भ्रम का जो शठसेवन करते हैं, वे नीचे से भी नीचे की ओर जाते हैं ॥४॥

अस्याहमेषमेंऽसोऽयमहमेवं तु यैः किल ।
मोहो बुद्ध्या परित्यक्त ऊर्ध्वादूर्ध्वं प्रयान्ति ते ॥५॥

बन्धन का अनुवाद कर, उसके मूल कारण तादात्म्याध्यास को भी छुड़ा रहे मनु महाराज अध्यासत्याग का फल सर्वोत्कर्ष बतलाते हैं–'अस्यां' इत्यादि से ।

'पुत्र, कलत्र आदि का मैं सम्बन्धी हूँ और पुत्र, कलत्र आदि परिवार मेरा सम्बन्धी हैं, मैं ऐसा हूँ ' इस तरह का मोह जिन लोगों ने बुद्धिपूर्वक छोड़ दिया है, वे महानुभाव ऊपर से भी ऊपर की ओर जाते हैं ॥५॥

स्वप्रकाशं स्वमात्मानमवलम्ब्याऽविलम्बितम् ।
आस्स्व संपूरिताकाशं जगन्ति नृप पश्य हे ॥६॥

हे नृप, अपने आप ही प्रकाशित हो रहे अपने स्वरुप का शीघ्र ही अश्रयण कर बैठ जाओ और समस्त जगत् को परिपूर्ण चिदाकाशरुप ही देखो ॥६॥

यदैवैवं चितो रूपं ततं बुद्धमखण्डितम् ।
तदैव तीर्णः संसारः परमेश्वरतां गतः ॥७॥

जिस समय में ही तुम उस प्रकार के पूर्ण तथा अखण्डित चैतन्यात्म का स्वरुप जान जाओगे, उसी समय संसार से तर जाओगे और परमेश्वर रुप हो जाओगे ॥७॥

ब्रह्मेन्द्रविष्णुवरुणा यद्यत्कर्तुं समुद्यताः ।
तदहं चिद्वपुः सर्वं करोमीत्येव भावयेत् ॥८॥

जीवात्मा जगत् का तो कर्ता है नहीं, फिर वह परमेश्वर रुप कैसे बन जाएगा इस शंका पर कहते हैं –

ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु और वरुण जिस-जिस वस्तु का निर्माण करने के लिए उद्यत हैं, उन सब का चिद्रूप मैं ही निर्माण करता हूँ, ऐसी भावना करनी चाहिए ॥८॥

येषु येषु यदा यद्यद्दर्शनेषु निगद्यते ।
सर्वमेवाऽङ्ग तत्सत्यं चिद्विलासो ह्यनङ्कुशः ॥९॥

जो-जो दर्शन शास्त्र हैं, चाहे वे वैदिक हों चाहे अवैदिक, उनमें जिस समय जिस-जिस मत का प्रतिपादन किया जाता है, हे पुत्र, वह सब सत्य ही है, क्योंकि चिद्-विलास पर किसी तरह का अंकुश नहीं है ॥९॥

चिन्मात्रत्वं प्रयातस्य तीर्णमृत्योरचेतसः ।
यो भवेत्परमानन्दः केनाऽसावुपमीयते ॥१०॥

संसार के पार हो जाने से कौन सा लाभ है, इस पर कहते हैं – 'चिन्मात्रत्वम्'

जो पुरुष ब्रह्मचैतन्य स्वरुप बन गया है, (अतएव) जो संसार रुपी मृत्यु से पार हो चुका है और जिसका चित्त विलीन हो गया है, ऐसे महापुरुष को जो परमानन्द प्राप्त होता है, उसकी उपमा किस आनन्द से दी जा सकती है यानी उसकी उपमा हो ही नही सकती। अर्थात् संसार के पार हो जाने से पुरुष को निरुपम परमानन्द की प्राप्ति उत्तम लाभ है ॥१०॥

ब्रह्म की सत्यता को लेकर यदि आप जगत् को शून्य नहीं मानते, तो द्वैत रुप आपत्ति आ जायगी। यदि 'नेति-नेति' इत्यादि श्रुति के आधार पर जगत् को शून्य रुप मानते हैं, तो सबको पैदा करने वाले परमेश्वर की रुपता नहीं बन सकती। यदि जगत् चैतन्य का रुप नहीं है, तो चैतन्य का कभी ज्ञान ही नहीं हो सकेगा, क्योंकि नीरुप का कहीं पर भी ज्ञान नहीं होता। यदि जगत् को चैतन्य का रुप मान लिया जाय, तो चैतन्य सविकार हो जायगा। अपिच जगत् आत्मरुप न माना जाय, तो असङ्ग आत्मा के साथ इसका सम्बन्ध न हो सकने से आत्मा की सत्ता और स्फूर्ति जगत् में हो नहीं सकेगी। यदि आत्मरुप मानें, तो जगत् का ज्ञान से बाध नहीं हो सकेगा।

इत्यादि दोषों का – अनिर्वचनीयतावाद का अवलम्बन कर-परिहार करते हैं– 'नाप्य' इन्यादि से।

नाप्यशून्यं न शून्यं च नाऽचिद्रूपं न चिन्मयम्।
नाऽऽत्मरूपं नाऽन्यरूपं भुवनं भावयन्भव ॥११॥

यह जगत् न तो अशून्य रुप है, न शून्य रुप है, न अचिद्रूप है, न आत्म रुप है और न अनात्मरुप ही है, किन्तु अनिर्वचनीय है, यह भावना करते हुए तुम स्थित रहो ॥११॥

तब जगत् किस तरह से शान्त हो जाता है इस पर कहते हैं– 'एतद्' इत्यादि से।

एतत्स्वरूपमासाद्य प्रकृतिः परिशाम्यति।
न देशो मोक्षनामाऽस्ति न कालो नेतरास्थितिः ॥१२॥

इस आत्मा का परमार्थिक स्वरुप प्राप्त कर यानि प्रत्यक्ष कर अविद्या शान्त हो जाती है। कोई मोक्ष नाम का न तो प्रदेश है, मोक्ष नाम का न कोई काल है और न कोई स्थिति ही मोक्ष नाम वाली है ॥१२॥

अहङ्कृतेर्विमोहस्य क्षयेणेयं विलीयते।
प्रकृतिर्भावनानाम्नी मोक्षःस्यादेष एव सः ॥१३॥

यह जो वासनारुपी प्रकृति (अज्ञान) है, वह अहंकाररुपी मोह के विनाश से समाप्त हो जाती है और यह अविद्याविलय (अज्ञान की समाप्ति) ही प्रसिद्ध मोक्ष है ॥१३॥

जब अज्ञान का नाश हो जाता है, तब पुरुष की स्थिति कैसी रहती है इस पर कहते हैं– 'प्रशान्तं' इत्यादि से ।

प्रशान्तशास्त्रार्थविचारचापलो ।
निवृत्तनानारसकाव्यकौतुकः ।
निरस्तनिःशेषविकल्पविप्लवः
समः सुखं तिष्ठति शाश्वतात्मकः ॥१४॥

जब योगी पुरुष का अज्ञान नष्ट हो जाता है, तब उसकी नाना प्रकार के शास्त्रार्थों के विचार की चंचलता नष्ट हो जाती है, तब काव्य नाटक आदि विषयों की उत्कण्ठा नष्ट हो जाती है और उसके सारे विकल्प विभ्रम विलीन हो जाते है ।

वह केवल समभाव में निष्ठा रखकर ब्रह्मरुप होकर सुख पूर्वक अवस्थित रहता है ॥१४॥

(वशिष्ठ महारामायणे)

'अनिलो मृगनाभिरेणुगन्धि-
अधिकाशि प्रणवोपदेशकाले ।
हरते भवजं श्रमं नराणां
हरवामार्द्धकुचोत्तरीयजन्मा ॥'

भगवान् शंकर मरणकाल में प्राणी को अपनी गोद में रखकर तारक मंत्र का उपदेश करने लगते हैं, उस समय जगन्माता पार्वती कस्तूरी की गन्ध से सुगन्धित अपने आंचल की वायु से उसकी मरण समय की व्याकुलता दूर करने लगती है ।

सम्प्रदायों द्वारा मोक्ष का स्वरूप

हे मुने दुस्सह दुःख निवारक मृत्युञ्जय, विश्वनाथ से भिन्न दूसरा कोई भी काल भय से निर्भय बनाने वाला नहीं है। मनुष्य जब तक शंकर भगवान् के शरणागत नहीं हो जाता तब तक यमराज का भय बना रहता है। काशी धाम में निवास, अमृत वाहिनी गंगा का जल और विश्वेश्वर के श्रेष्ठ लिंग का स्पर्श करके मनुष्य निर्भीक एवं पूजनीय बन जाता है। थोड़े ही दिनों में बाल्य, कौमार, यौवन-एवं बृद्धत्व असावधानी में ही बीत जाते हैं। अतएव जब तक जरा नहीं आती, इन्द्रियाँ असमर्थ नहीं हो जाती तब तक तो काशी का सेवन करें।'

हे अगस्त्य मृत्यु का सबसे बड़ा चिन्ह तो वृद्धावस्था है। इसके आने पर भी

मनुष्य भयभीत नहीं होता। यही महान् आश्चर्य है। मनुष्य जरा से पराभूत होकर सब ओर पराभव पाने लगता है।

बूढ़े पिता का पुत्र भी कहना नहीं मानता। अर्द्धांगिनी भी अनादर करने लगती है। बन्धु भी उदासीन हो जाते हैं।

जरा के समान कोई व्याधि एवं दुःख नहीं है। सबसे अपमान कराने वाली जरा से बढ़कर कोई वस्तु नहीं। प्रत्यक्षतः जरा ही मृत्यु की पूर्व सूचना है। थोड़ा सा काशीवास करने से मौत जीती जा सकती है। काशी का पाना योग, तपस्या और दान है। काशीवास करने से एवं काशी में मरना ही शंकर से तादात्म्य प्राप्त करना है।

यदि नियम पूर्वक काशीवास किया जाय तो कलि, काल, जरा, पाप, रोग और विघ्नों के समूह कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते। शास्त्रविधि है कि जीवन निर्वाह करने वाला व्यक्ति काशी मे रहकर स्वर्ग निवासी देवगणों से श्रेष्ठ है। भगवान् भूतभावन सुन्दर कंदराओं वाले मंदराचल पर विराजमान होकर भी काशीपुरी के निवास बिना प्रसन्नता नहीं प्राप्त कर पाते। (स्कन्द पु०)

जब तक प्राणी मानस तीर्थ के सत्य रूपी जल से स्नान नहीं करता तब तक उसके 'मैं' का भाव बना रहता है। जहां ज्ञान रूपी हृद कुण्ड में स्नान किया उसका (अहम भाव) का निःशेष होने में देर नहीं लगती। ''मैं'' के निःशेष होते ही- अंहकार के नष्ट होते ही मोक्ष के द्वार खुल जाते हैं।

खेताश्वतरोपनिषद् (२/७) - में 'योनि - मुक्ति - स्थिति को ही मोक्ष माना गया है।

मुण्डकोपनिषद् (३/२/७) - में मोक्ष का स्वरूप इस प्रकार निरूपित है –

गताःकलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वेप्रतिदेवतासु। कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्ययेसर्वएकीभवंति।

अर्थात् पंद्रह कलाएँ (देहारम्भकतत्व) अपने आश्रयों में स्थित हो जाती है। (चक्षु आदि इंद्रियों के अधिष्ठाता) समस्त देवगण अपने प्रति देवता (आदित्यादि) - में लीन हो जाते हैं तथा उसके (संचितादि) कर्म और विज्ञानमय आत्मा आदि सब के सब अव्यय देव में एकीभाव को प्राप्त हो जाते हैं

महात्मा बुद्ध ने इस स्थिति को निर्वाण की संज्ञा दी है। उनके अनुसार सभी भावी दुःखों के एकान्तिक निराधका ही दूसरा नाम निर्वाण है।

महाकवि अश्वघोष ने 'सौंदरानन्दकाव्य' में परम शान्ति की उपलब्धि को निर्वाण बतलाया है। जिस प्रकार दीपक में तेल के क्षय होने के कारण शान्ति को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार प्राणी जीवन्मुक्त होकर जब निर्वाण को प्राप्त होता है तो न किसी ओर जाकर '**क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ।**'

पाश्चात्य दर्शन साधना की इस ऊँचाई तक अभी नहीं पहुँच सके हैं वहां परम काम्य स्वर्ग है। स्वर्ग है क्या? यह वह स्थान, जहां '**सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः (अथर्व० ६/१२०।३)**

(३) अर्थात् मित्रतायुक्त पुण्यात्मा जब अपने शारीरिक रोग को छोड़कर आनन्द करते हैं। (कुरान में इसे 'जन्नत' की संज्ञा दी गयी है। उसमें एक स्थान पर कहा गया है - 'जन्नतवालों से कह दिया जायेगा यहा तुम स्वस्थ रहोगे, कभी बीमार न होगें, सदैव जीवित रहोगे, कभी मरोगे नहीं। हमेशा खुशहाल रहोगे, कभी बदहाल न होंगे, सदैव जवान रहोगे, कभी बूढ़े नहीं होंगे।'

कन्फ्यूशस की स्वर्ग विषयक यह धारणा कि ईश्वर से एकता स्थापित करना ही स्वर्ग है, भारतीय विचारधारा से बहुत कुछ मेल खाती है। जैनमत के अनुसार ऊर्ध्वलोक में स्थित सिद्ध शिला ही स्वर्गपुरी है। यह चौदंहवे लोक की शिखा पर है। उस सिद्ध शिला के ऊपर शिवपुरधाम है। उसमें भी मुक्त पुरुष रहते हैं। वहाँ जन्म-मरणादि कोई दोष नहीं है। मुक्त पुरुष वहां आनन्द करते रहते हैं। पुनः जन्म मरण में नहीं आते सब कर्मों से छूट जाते हैं। (रत्नसारभाग, पृष्ठ २३)

वाइबिल में स्वर्ग एक दिव्य धाम के रूप में माना गया है जिसका वैभव अतुलनीय है (प्रकाशित-वाक्य २१/९ २७, २२) १-३) दान, पश्चाताप, संतोष, संयम, दीनता, सत्य, और दया - ये स्वर्ग के सात द्वार है।

हजरत मोहम्मद कहते हैं 'तेरा स्वॅग तेरी माँ के पैरों तले हैं।' वास्तव में स्वर्ग और पृथ्वी सब हमारे ही अन्दर है। हम पृथ्वी से तो परिचित हैं, पर अपने अंदर के

स्वर्ग से बिल्कुल अपरचित हैं। संतों के उपदेश ही उस दिशा में सहायक होते हैं तथा इस यथार्थ को वाणी प्रदान करते हैं कि स्वर्ग मनुष्य के जीवन में हैं। वह ठोस नहीं तरल है, जो मंदाकिनी की तरह प्राणों से कल-कल ध्वनि करती है। वह प्रेम में है, दया में है, सहानुभूति में है, हरि ही स्वयं ही मूर्तिमान प्रेम स्वरूप है - 'प्रेम हरी का रूप है, त्यो हिर प्रेम स्वरूप।' जो मैं और मेरा-दोनों भावों को छोड़कर दुःख रूप जन्ममरणादि संसार बंधन को अनित्य देख कर अपने ज्ञानरूपी अग्नि से उसे भस्म कर आत्मतत्त्व ईश्वर में प्रवेश कर जीवन मुक्त होते हैं।

॥काशी मोक्ष रहस्य समाप्त ॥

मरणासन्न प्राणी के लक्षण

अगस्त्य ने पूछा हे स्कन्द निकटवर्ती मृत्यु का ज्ञान कैसे होता है? उसके कौन से लक्षण है? इसका रहस्य मुझे बताने की कृपा करें। 'स्कन्द बोले– मुनिवर अब मृत्यु के लक्षण कहता हूँ। इसे सुनिए– जिसके दक्षिणी घ्राणरन्ध्र से दिन-रात श्वास चले तो वह आयुष्मान होने पर भी तीन वर्ष के अन्दर मर जाता है।

जिसके दो या तीन रात-दिन दक्षिणी नासारन्ध्र से निश्वास यातायात करे उसके जीवन क्री अवधि एक वर्ष की है। जिसके दश दिनों तक दोनो नासा पुटों से श्वास चले वह तीन दिन में मर जाता है। जिसके दो दिनों तक मुख से श्वास चले वह मर जाता है।

जिस पुरुष का वीर्य, मल, मूत्र या छींक, साथ ही स्खलित हो वह एक वर्ष में ही मर जाता है। जो आकाश में नागवृन्द को विचरते देखता है वह छः मास भी नहीं जीवित रह सकता। जिसकी मृत्यु निकट आ जाती है वह अरुन्धती, ध्रुव, मातृमंडल और विष्णुपद को नहीं देख पाता। मानव शरीर में जिह्वा को अरुन्धती, नासिका के अग्रभाग को ध्रुव, भूमध्य को विष्णु पद और नेत्रों के मध्य भाग को मातृमंडल कहते है।'

'जिसें रंग विवर्ण, कड़ुए, खट्टे रसों का स्वाद विपरीत ज्ञात होता है वह शीर्घ मृत्यु भागी होता है। जिस मनुष्य की आयु छः मास शेष रह जाती है, उसके कंठ, ओष्ठ जिह्वा और तालु विवर्ण होकर सूखने लगते है। वीर्य, हाथ के नख, नेत्रकोण काले हो जायें वह छः मास में मर जाता है। जो मैथुन के समय छींकता है या मैथुन

के अन्त में छींकता है वह पांच महीनों में मर जाता है । तिरंगा गिरगिटान जिसके मस्तक पर चढ़ जाये उसकी आयु छ: महीनों में समाप्त हो जाती है । स्नानान्तर जिसके दोनों हाथ पैर तत्क्षण सूख जायें वह तीन मास में मर जाता है । जिसके पैर का चिन्ह धूल या कीचड़ में पड़ने पर कटा ज्ञात हो वह पांच महीनों मे मरता है । शरीर के निश्चल रहने पर भी जिसकी परछाही हिलती रहे वह चौथे मास में मौत का शिकर हो जाता है । जो जल, घृत या दर्पण में अपने मस्तक का प्रतिबिम्ब न देख पाये वह महीने भर में मर जाता है। बुद्धि-भ्रान्ति, स्खलित, अनायास इन्द्र धनुष का दर्शन, रात्रि में दो चन्द्रमा, दिन में दो सूर्य दिखलाई पड़ना, रात्रि में ताराहीन आकाश वृक्ष या पर्वत पर गन्धर्वालय और दिन में पिशाचों का नृत्य देखना भी मृत्यु सूचक है । जो अपनी छाया को दक्षिण दिशा में समाश्रित देखता है वह पांच ही दिन में पंचत्व को प्राप्त होता है ।

जो स्वप्न में पिशाच, असुर, कौआ, भूत-प्रेत, कुत्ते, गिद्ध, सियार, गधा, सूकर, ऊँट, बानर, बाझ पक्षी, खच्चर और बगुले पर अपने को सवार देखता है वह एक वर्ष में यमपुरी का आतिथ्य ग्रहण करता है । स्वप्न में अपना शरीर रक्त वर्ण के गन्ध, पुष्प और वस्त्रादि से भूषित देखे तो वह प्राणी आठ मास में मौत पाता है स्वप्न समय में जो प्राणी अपने को धूल के ढेर पर चढ़ा हुआ या बलिदान के खम्भे से बँधा देखे तो उसका छ: मास में नाश होता है । जो मनुष्य स्वप्न में अपने को गधे पर चढ़ा, तेल लगाए , सिर मुड़ाए , दक्षिण दिशा में जाता हुआ देखता है वह छठे मास में मृत्यु को प्राप्त होता है । जो अपने आगे काला वस्त्र पहने, लोहे का डंडा लिए हुए काले पुरुष को खड़ा देखता है वह तीन महीने में मर जाता है । जिसे स्वप्न में श्याम वर्णा कुमारी आलिङ्गन करे वह एक मास में मर जाता है । जो व्यक्ति स्वप्नावस्था में वानरारूढ़ होकर दक्षिण दिशा में प्रयाण करता है उसे पाँच दिन में यमराज का शिकार होना पड़ता है । यदि कोई कृपण हो जाये अर्थात् सहसा जीव का स्वभाव परिवर्त्तन हो जाये तो वह व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता । ये कहे हुए लक्षण ही मौत की पहचान है ।'

यमलोक के मार्ग

मनुष्य के मृत्यु के समय आत्मा का सम्बन्ध शरीर से टूट जाता है। जीव शरीर से निकलते समय जोर-जोर से रोता है । पिता, माता, भाई, चाचा, मामा, स्त्री और

मित्र गुरु इन सब से नाता टूट जाता है। सभी सगे समबन्धी आंखों में आँसू भरे देखते रह जाते हैं, और वह अपने शरीर को त्याग कर यमलोक की यात्रा के लिए उसी खतरनाक यमदूतों के रास्ते से चल पड़ता है । वह मार्ग अन्धकारपूर्ण, अपार, अतिभयंकर और पापियों के लिए अति दुर्गम होता है । यमदूत पाश में बाँधकर उसे खींचते और मुग्दरों से पीटते हुए विशाल पथ पर ले जाते हैं । यमदूतों के अनेक रूप होते हैं और समस्त प्राणियों को भय पहुँचाने के लिए होते हैं । उनके मुख विकराल और नासिका टेढ़ी आँखें तीन दाढ़ी कपाल और मुख फैले हुए तथा लम्बे होते हैं । वे अपने हाथों में विकराल एवं भयंकर आयुध लिये रहते हैं । उन आयुधों से अग्नि की लपटें निकलती रहती है । पाश, सांकल और दण्ड से भय पहुँचाने वाले महाबली महाभयंकर यम किंकर यम की आज्ञा से प्राणियों की आयु समाप्त होने पर उन्हें लेने आते हैं। जीव यातना भोगने के लिए अपने कर्म के अनुसार ज़ो भी शरीर ग्रहण करता है उसे ही यमराज के दूत यम के लोक में ले जाते हैं । वे उसे काल पाश में बाँध कर पैरों में बेड़ी डाल देते हैं । बेड़ी की सांकड़ बज्र के समान कठोर होती है । यह किंकर क्रोध में भर उस बंधे हुए जीव को भली भांति पीटते हुए ले जाते हैं । लड़खड़ा कर गिरता है, रोता है और हाय मां हाय बाप हाय पुत्र हाय स्त्री हाय देवी कह कर बारम्बार चीखकता और चिल्लाता है तो भी दूषित कर्म वाले उस पापी को वे तीखे शूलों, मुग्दरों, खड़गों और शक्तियों के प्रहारों और ब्रजमय भयंकर डण्डों से घायल करके जोर- जोर से डाँटते और पीटते हैं । कभी - कभी तो एक पापी को अनेक यमदूत चारों ओर से घेर घेर कर पीटते हैं । बेचारा जीव दुख से पीड़ित और मूर्छित होकर गिर पड़ता है । फिर भी वे दूत उसे घसीटते हैं भय से कांपते लड़खड़ाते दुख से रुदन करते हुए जीव को उस मार्ग से जाना पड़ता है । यमदूतों की फटकार पड़ने से वे उद्विग्न हो उठते हैं और कांपते हुए दौड़ने लगते हैं । जो मार्ग उनके चलने का है उसमें काटे बिछे होते हैं और कुछ दूर तक तपी हुई बालू होती है । जिन मनुष्यों ने परोपकार नहीं किया और जीवों को आराम नहीं दिया वे उस मार्ग पर जलते हुए पैरों से चलते हैं । जीव हिंसक मनुष्यों के सब ओर मरे हुए बकरों की लाशें पड़ी होती है । जिन जिन जानवरों को मार कर उनके मांस जीते जी चमड़ियां उधेड़ कर जो मनुष्य खाते हैं मरने के बाद उनके इर्द गिर्द वे आत्मायें जिनका उन्होंने भक्षण किया था चिल्लाती और चीखती है जिनकी जली और फटी हुई चमडी के मेदे से रक्त की दुर्गन्ध आती रहती है । वे दर्द से पीड़ित होकर जोर-जोर से चिल्लाते और

चीखते हुए यममार्ग की यात्रा करते हैं और वे मुंह फाड़ कर कहते हैं कि इनको छोड़ो मैं इनका भक्षण करूँगा। उस वक्त महाबली यमदूत खड्ग तोमर वाण तीखी नोक वाले शूलों से उसका अंग - अंग टुकड़े कर देते हैं कुत्ते बाघ भेड़िये इनके शरीर का मांस नोच नोच कर खाते रहते हैं, मांस खाने वाले लोग उस मार्ग पर चलते समय आरों से चीरे जाते हैं सूअर अपनी दाढ़ों से दबाकर उसके शरीर को फाड़ देते हैं। जो अपने ऊपर विश्वास करने वाले स्वामी, मित्र अथवा स्त्री की हत्या करते हैं वे शास्त्रों द्वारा या ऋषियों की वाणी द्वारा छिन्न भिन्न होकर यम लोक के मार्ग पर जाते हैं। जो बिना अपराध जीवों को मारते व मरवाते हैं वे राक्षसों के सिकार बन कर उस रास्ते यात्रा करते हैं। जो पराई स्त्रियों के वस्त्र उतारते हैं या उन्हे भ्रष्ट करते हैं वे नंगे करके दौड़ाते हुए लाये जाते हैं, यमलोक में। जो दुरात्मा, पापी, अन्न, वस्त्र, सोने, चाँदी और घर खेत का अपहरण करते हैं वे यमलोक के मार्ग पर कांटो पर दौड़ाये जाते हैं।

महातामिस्त्रनामक नर्क

महातामिस्त्र नामक नर्क और भी दुखदाई है। उसका वर्णन इस प्रकार है, लोहे के एक बहुत विशाल पहाड़ के ऊपर चट्टान पड़ा रहता है। जो पराई स्त्रियों के साथ सम्भोग करने वाले मनुष्य होते हैं उसी चट्टानों के नीचे जलाये जाते हैं। जिसमें इतनी गर्मी होती है जैसे गर्म बालू में चना डाल दिये जाने पर तुरन्त खिल जाता है। उसी तरह जीव भूने जाते हैं।

शालमाल नामक नर्क

शालमाल नामक एक नर्क है। वहां शालमल का आलिंगन करना पड़ता है। उसी छड़ असहनीय कष्टदायक पीड़ा होती है। जो लोग सदा झूठ बोलते हैं और दूसरों को वाणी द्वारा कष्ट पहुँचाते हैं मृत्यु के समय उनकी जीभ यमदूतों द्वारा काट दी जाती है।

महारौरव नामक नर्क

जो व्यक्ति वासना से पराई स्त्रियों की ओर देखते हैं उन्हें यमराज के दूत बाण मार कर उनकी आँखें फोड़ देते हैं। जो माता, बहन, कन्या और पुत्र बधू के साथ समागम तथा बालक बूढ़ो की हत्या करते हैं उनकी भी यही दशा होती है। वे चौदह इन्द्रों की आयु पर्यन्त नर्क यातनाओं में पड़े रहते हैं।

महारौरव नामक नर्क ज्वालाओं से धधकते हुए अत्यन्त भंयकर है। महारौरव नामक नर्क का विस्तार चौदह योजन है जो मूर्ख नगर, घर अथवा खेत में आग लगाते हैं वे एक कल्प तक उसमें पकाये जाते हैं। यमराज के दूत चोरों को उसी में डालकर शूल शक्ति गदा और खड्ग से उन्हें तीन सौ कल्पों तक उसी में पीटते रहते हैं।

मंजूस नामक नर्क

मंजूस नामक नर्क लोहे से बना हुआ है। वह सदा अग्नि की भांति जला करता है। उसमें वे डाल कर जलाये ज.ते हैं जो दूसरों को निपराध बन्दी बनाते हैं और धोखा देते हैं, झूठ बोलते हैं, साधू-सन्तों का अपमान करते हैं।

अप्रतिष्ठ नामक नर्क

अप्रतिष्ठ नामक नर्क पीप व मूत्र और विष्ठा का भण्डार है जो सज्जनों व ब्रह्म ज्ञानी ब्राह्मणों को जो पीड़ा देने वाले पापी है उन्हें नीचे मुंह करके इसी नर्क में गिराया जाता है। जिसका कष्ट अत्यन्त दुखदायी है।

विलेपक नामक नर्क

विलेपक नामक घोर नर्क लाह की आग से जलता रहता है। इस नर्क में मदिरा पीने वाले और परनारियों के साथ गमन करने वाले कोई भी मनुष्य डाल कर जलाये जाते हैं। जीवों का वहां से निकलना बड़ा मुश्किल होता है।



पं. श्रीकान्त बाल व्यास जी



पं. केदारनाथ व्यास जी

प्रणीत